5.2

उपाख्यानमञ्जरी

(संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित)

सम्पादक -

स्व.म.म.पं.बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

व्याख्याकर्त्री

डॉ. कमला पाण्डेया

उपाख्यानमञ्जरी

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहिता

सम्पादकाः
स्व. म. म. पं. बटुकनाथशास्त्रिखिस्तेवर्याः

व्याख्याकर्त्री
डॉ. कमला पाण्डेया
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
वसन्त कन्या महाविद्यालय,
कमच्छा, वाराणसी।

सन् २००७ मूल्य ५०/-

प्रकाशक -
डॉ. विनोदकुमार खिस्ते
श्री निकेतनम्
एन् १६/४६ पत्रकारनगर,
विनायका, वाराणसी-२२१०१०

पुस्तक प्राप्तिस्थान-
शारदा संस्कृत संस्थान
सी.२७/५९ जगतगंज, वाराणसी-२२१००२
दूरभाष. - (०५४२) २२०४१६८

विषय-सूची

विषय	पृ.सं.
कथा-साहित्य के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा	4
उपाख्यानमञ्जरी-कथानक	5
१. त्रिविक्रमसेन-वेतालोपाख्यानाम्	१ - ८
२. मन्दारवती-ब्राह्मणत्रयोपाख्यानम्	९ - १८
३. शूद्रक-वीरवरोपाख्यानम्	१९ - ४३
४. यशःकेतु-दीर्घदर्श्युपाख्यानम्	४४ - ७५
५. हरिस्वामिविप्रभार्योपाख्यानम्	७६ - ८८
६. उपसंहार-कथा	८९ - ९८

दो शब्द

संस्कृत की कतिपय कथाओं का यह छोटा सा संग्रह 'उपाख्यान-मञ्जरी' सुरभारती का अनुशीलन करने वाले छात्रों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। इस संग्रह का मुख्य उद्देश्य छात्रों को संस्कृत भाषा की सरल, सरस तथा सुबोध कथाशैली एवं गद्यरचना से परिचित कराना है, साथ ही मध्यमा स्तर के छात्र भी इन कथाओं का अर्थावगमन कर स्वयं संस्कृत गद्य लेखन में प्रवृत्त हो सकें, अतः **कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते** के व्याज से उपाख्यानमञ्जरी में मूल कथा के प्रारम्भ में अन्य उपयोगी कथा साहित्य से सुसज्जित कर इसे परिपूर्ण बनाया गया है। जिससे माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर प्रवर्धित होती रहे।

इन्हीं तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए 'वेतालपंचविंशतिका' की मनोरंजन कथाओं में से छात्रोपयुक्त छः कथाओं को सर्वोपयुक्त समझकर इसे संस्कृत प्रेमियों के मध्य प्रस्तुत किया गया है। कथाओं का चयन करते समय छात्रों की उपयोगिता का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

आशा है इसका समुचित आदर तथा उपयोग होगा।

–सम्पादक

कथा-साहित्य के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा

कथा-साहित्य की उपयोगिता आजकल ही नहीं, अत्यन्त प्राचीन-काल से भारतवर्ष के विद्वानों को अवगत थी। कथाओं के द्वारा उपदेश देना अध्यापन- कला का महत्वपूर्ण अंग था। आज पाश्चात्य साहित्य के परिशीलन से हम अध्ययन के क्षेत्र में कथा की उपयोगिता स्वीकार करने लगे हैं, परन्तु इतिहासज्ञ विद्वानों से यह छिपा नहीं है कि सबसे पहले कथा-साहित्य का उदय, विकास, तथा समृद्धि इसी भारतवर्ष में हुई थी। ये कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय होती थीं और अनायास इनका प्रचार होता था। इस प्रकार 'कहानी' का जन्म-भूमि यही भारतवर्ष रहा है।

षष्ठ शताब्दी से भारतवर्ष में पञ्चतन्त्र की लोकप्रिय कथाओं का प्रचार देखा जाता है। जर्मन विद्वान् डॉ. हर्टेल ने पञ्चतन्त्र के विषय में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक अन्वेषण किया है। बाल-साहित्य की दृष्टि से पञ्चतन्त्र की रचना बेजोड़ है। इसका अनुवाद ई. ५३३ ई. पहलवी भाषा में किया गया, और क्रमशः सीरियन तथा अरबी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। संसार की विभिन्न भाषाओं में इसकी कहानियों का प्रसार हुआ।

संस्कृत का कथा-साहित्य दो धाराओं में विभक्त है–१. उपदेश और २. मनोरञ्जन। पहली श्रेणी में पञ्चतन्त्र की कथाएं आती हैं। विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध पशु, पक्षी आदि को आधार बनाकर लिखी गई कहानियाँ इसी की रूपान्तर हैं।

दूसरी मनोरञ्जनात्मक शैली का सबसे पहला व प्रमुख ग्रन्थ है–'बड्डुकहा' या बृहत्कथा। इसका निर्माण राजा 'हाल' के सभाकवि गुणाढ्य ने किया था। कुछ विद्वान् इसका रचनाकाल पञ्चम शतक, तथा दूसरे लोग विक्रम की प्रथम शताब्दी मानते हैं। इसके निम्नलिखित तीन प्रकार उपलब्ध होते हैं–

(१) बृहत्कथाश्लोकसंग्रह–बुधस्वामीकृत (८वीं शताब्दी)

(२) बृहत्कथामञ्जरी–क्षेमेन्द्रकृत (१२वीं शताब्दी)

(३) कथासरित्सागर–सोमदेवकृत (क्षेमेन्द्र के समकालीन)

बृहत्कथा को कहानियों का कोष कहना अनुचित न होगा। इसीलिये प्राचीन विद्वानों में वाल्मीकि और व्यास के साथ ही साथ गुणाढ्य का भी नाम लिया जाता है। बृहत्कथा का प्रभाव केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु बृहत्तर भारत तथा पाश्चात्य देशों तक फैला है। बृहत्कथा के कथा-साहित्य के व्यापक प्रवाह में 'वेतालपञ्चविंशति'

भी उपलब्ध होती है। बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर में तो ये कहानियाँ उपलब्ध होती हैं, परन्तु बुधस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में नहीं उपलब्ध होतीं। इसीलिये कुछ लोग इन कथाओं की स्वतंत्र परम्परा को ही स्वीकार करते हैं।

बृहत्कथामञ्जरी में १२२० श्लोकों में वेतालविंशति की कहानियाँ ग्रथित हैं, और कथासरित्सागर में २१९५ पद्यों में इसका वृत्तान्त उपलब्ध होता है। कालान्तर में इन्हीं कथाओं का संग्रह गद्यात्मक रूप में 'शिवदास' नामक रचयिता के द्वारा लिखा गया, जिसमें कहीं-कहीं पद्य भी लिखते हैं। इसी प्रकार 'जम्भलदत्त' ने भी इसका गद्य में रूपान्तर किया। इसकी रचना में केवल गद्य ही है। इन्हीं दोनों संस्करणों के मिले-जुले रूप आज उपलब्ध होते हैं, जिनका अनुवाद भारतीय भाषाओं में अनेक बार हो चुका है। डॉ.हर्टेल की राय में 'शिवदास' की 'वेतालपञ्चविंशति' सन् १४८७ई. से बहुत प्राचीन हैं, क्योंकि इसी काल की हस्तलिखित प्रति उन्हें उपलब्ध हुई थी।

उपाख्यानमञ्जरी-कथानक

'वेताल पञ्चविंशति' की कथाएँ अत्यन्त रोचक, बुद्धिवर्धक तथा कौतूहलोत्पादक हैं। इनमें विचित्र कथानक के साथ ही मार्मिक उपदेश तथा चरित्र चित्रण भी उपलब्ध होता है। इसी पुस्तक की सारभूत यह उपाख्यानमञ्जरी नामक पुस्तिका है। इसका कथानक इस प्रकार है–महाराज त्रिविक्रमसेन (जो बाद में विक्रमादित्य कहे गये) अपने दरबार में बैठे हैं। एक श्रमण भिक्षु उनके पास आकर रोज उन्हें एक फल देता है, महाराज उसे अपने खजाञ्ची को देते हैं, खजाञ्ची उन्हें कहीं डाल देता है। एक दिन महाराज उस फल को अपने पालतू वानर को देते हैं। वानर दांतों से फल को चबाने लगता है। उसके छीलने से भीतर की रत्न की प्रभा दिखाई देती है। तब महाराज को कुछ आश्चर्य तथा जिज्ञासा होती है। दूसरे दिन उसी प्रकार भिक्षु के फल देने पर महाराज उससे इस उपहार का कारण पूछते हैं। भिक्षु इन्हें एक ओर ले जाकर कहता है–'राजन्! मुझे एक अत्यन्त दुष्कर साधना करनी है जिसमें आप जैसे साहसी वीर की सहायता. आवश्यक है।' महाराज सहायता देना स्वीकार करते हैं।

भिक्षु के कथनानुसार महाराज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की मध्य रात्रि में नंगी

तलवार लेकर महाश्मशान पर पहुंचते हैं, जहाँ भिक्षु अपनी साधना के लिए उनकी प्रतीक्षा करता है। उनके आने पर भिक्षु उनसे कुछ दूरी पर वन में वृक्ष पर लटकने वाले वेताल (शव) को लाने की प्रार्थना करता है। जैसे ही महाराज वहाँ जाकर उस शव को उतारकर लाने की चेष्टा करते हैं वैसे ही उस शव में अधिष्ठित वेताल अट्टहास कर अनेक चेष्टाएँ दिखलाने लगता है, परन्तु वे दृढ़ चित्त से बारंबार उसे उतारकर कधे पर लादकर चलने लगते हैं। महाराज को मौनभाव से चलते देख वेताल उन्हें नई-नई अद्भुत कहानियाँ सुनाता है और प्रत्येक कहानी के अन्त में कुछ प्रश्न पूछता है। महाराज ज्यों ही उसका समाधान कर देते हैं त्यों ही वह पुनः उसी वृक्ष पर जा लटकता हैं। यही क्रम सब कहानियों में चलता है।

अन्त में महाराज के अद्भुत शौर्य, साहस आदि गुणों के कारण वेताल प्रसन्न होकर उन्हें बतलाता है कि जिस साधु की तुम सहायता करना चाहते हो वस्तुतः वह तुम्हें धोखा दे रहा है। वह इस शरीर में मंत्रों के द्वारा मुझे बुलाकर पूजा करेगा और अन्त में तुम्हें बलि देकर स्वयं विद्याधर बनकर अष्टसिद्धि प्राप्त कर लेगा। अतः अब मैं वहां चलता हूँ। पूजा के पश्चात् जब तुम्हें भिक्षु साष्टांग प्रणाम करने को कहे तब तुम उससे कहना कि 'एक बार तुम वैसा ही प्रणाम करके मुझे दिखा दो ताकि ठीक वैसा ही मैं भी कर सकूँ।' बस ज्यों ही वह तुम्हें दिखाने को साष्टांग प्रणाम करे त्योंही तुम खड्ग से उसका सिर काटकर मुझे अर्पित कर देना, ऐसा करने से वह सिद्धि तुम्हें ही प्राप्त हो जायगी।

वेताल के कथानुसार महाराज भिक्षु के झुकते ही तलवार के एक ही वार से उसका सिर काटकर वह वेताल को अर्पित कर देते हैं। वेताल के वर से महाराज को संसार के सारे भोग मिल जाते हैं और मृत्यु के बाद वे विद्याधरों के चक्रवर्ती बन जाते हैं। यह है संक्षेप में इसकी मूल कथा।

इन कथाओं में से छः कथाएँ छाँटकर इस संग्रह में गुम्फित की गई हैं। कथाओं का अवचयन करते हुए छात्रों की दृष्टि से उपयोगिता का पूरा ध्यान रखा गया है।

उपाख्यानमञ्जरी

त्रिविक्रमसेन-वेतालोपाख्यानम्

अस्ति गोदावरीतटे प्रतिष्ठानाख्यो जनपदः। तत्र विक्रमसेनस्य भूपतेः पुत्रः शक्रपराक्रमः त्रिविक्रमसेनो नाम त्रिख्यातकीर्तिरभूत् नृपतिः।

तस्य सभाऽऽसीनस्य नृपस्य सेवार्थ प्रत्यहं क्षान्तिशीलो नाम भिक्षुः एकैकं फलमुपानयत् ।

सोऽपि तदादाय आसन्नचरस्य कोशाधिकारिणो हस्ते प्रतिदिनं न्यक्षिपत्।

अस्तिगोदावरी तटे = गोदावर्या नद्याः तटेप्रतिष्ठानाख्य जनपदः = प्रतिष्ठान नामकं नगरम् आसीत्।

तत्र त्रिविक्रमसेनस्य भूपतेः = तन्नामकस्य राज्ञः पुत्रः = सुतः, शक्रपराक्रमः = इन्दुतुल्य बलशाली त्रिविक्रमसेनो नाम विख्यातकीर्तिः = विख्याता कीर्तिः यस्य सः जगत्प्रसिद्धः इतिभावः, अभूद् नृपतिः = राजा अभूत्। तस्य सभासीनस्य = सभायाम् उपविष्टस्य सेवार्थं प्रत्यहं = प्रतिदिनं क्षान्तिशीलो नाम भिक्षुः एकम् एकं फलम् उपानयत् = उपहरति स्म।

स = राजा अपि तत्फलम् आदाय आसन्नचरस्य = समीपस्थितस्य कोषाधि-कारिणः हस्ते प्रतिदिनं न्यक्षिपत् = दत्तवान्।

गोदावरी नदी के तट पर प्रतिष्ठान (पुर) नाम का शहर था। वहां विक्रम सेन नाम के राजा राज्य करते थे। उनके पुत्र का पराक्रम (वीरता) इन्द्र के समान थी (अर्थात् उनका पुत्र इन्द्र के समान वीर था) वह त्रिविक्रम सेन नामक राजा हुआ। उसकी कीर्ति पूरे विश्व में फैली थी।

जब एक बार वे (त्रिविक्रमसेन) सभा में बैठे थे। एक भिक्षु प्रतिदिन उनको एक-एक फल उपहार में देता था। उस भिखारी का नाम क्षान्तिशील था।

वह राजा भी उस फल को लेकर अपने पास ही बैठे खजांची के हाथ में उसे सोंप देता था।

इत्थं द्वादशसु वर्षेषु गतेषु एकदा सभागतोऽसौ भिक्षुः राज्ञे यथायथं फलं दत्त्वा सभागृहात् निरगात्। राजा तु तस्मिन्नहनि दैवात् प्रविष्टाय रक्षिणां हस्तच्युताय क्रीडामर्कटपोताय तत् फलं प्रादात् ।

स मर्कटः यावत् तत् फलमश्नाति, तावत् तस्मात् फलात् विदलितात् अनर्घम् उत्तमं रत्नं निरगात् । तद् दृष्ट्वा राजा तदादाय तं भाण्डागारिकं पप्रच्छ--'भिक्षुणा उपनीतानि यानि फलानि मया तव हस्ते दत्तानि, तानि त्वया सदा क्व स्थापितानि?'

तदाकर्ण्य कोषाध्यक्षः सभयस्तं व्यजिज्ञपत्-देव ! मया तानि अखण्डानि च गवाक्षतः क्षिप्तानि, यदि आदिशति देवः, तदा तानि साम्प्रतं

एवं द्वादशवर्षाणि व्यतीतानि। एकदा स भिक्षुः सभायाम् आगतवान्। नियमेन राज्ञे तत्फलं प्रदाय सभागृहाद् निरगाद् = निरगच्छत्। तस्मिन् दिने राजा तत्फलं = दैवात् संयोगात् रक्षकाणां हस्तात् च्युताय क्रीडायै = मनोविनोदाय स्थापितः यः मर्कटस्य = वानरस्य, पोतः = शिशुः तस्मै वानरशिशवे तत्फलं दत्तवान्।

स मर्कटः तं खादितुं फलं विदारितवान् = खण्डितवान्। तस्मात् फलात् अनर्घं = बहुमूल्यम् उत्तमं रत्नं बहिरागच्छत्। तत्फले तादृशं रत्नम् अवलोक्य राजा तद्गृहीत्वा भाण्डागारिकं = कोषाध्यक्षम् अपृच्छत्, यानि फलानि भिक्षुः उपनीतवान्, अहं तव हस्ते दत्तवान्। तानि कुत्र स्थापितानि त्वया इति।

राज्ञः वचनं श्रुत्वा कोषाध्यक्ष = तदाकर्ण्य, सभयः = भीतः, सन् तं = राजानं व्यजिज्ञपत्=अब्रवीत्-देव ! अहं तानि सर्वाणि अखण्डानि फलानि गवाक्षात्

इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। एक बार वह भिखारी फिर से सभा में आया और नियम से राजा को वह फल देकर सभागृह से निकल गया। उस दिन राजा ने संयोग से रक्षकों के हाथ से छूट कर भागे और वहां घुसे खेलने के लिए रखे बन्दर के बच्चे को वह फल दे दिया।

वानर ने खाने के लिए फल को तोड़ डाला, तब उस फल से अत्यधिक मूल्यवाला उत्तम रत्न निकला। उस फल में वैसा रत्न देख कर राजा ने उसको हाथ में लिया और भण्डारी से पूछा-जिन फलों को भिक्षु लाया था और मैंने तुम्हारे हाथ में वे फल दिये, वे सब कहाँ हैं? तुमने उनको कहां रखा है?

गवेषये' इत्यूचिवान् स राज्ञाऽनुमतो गत्वा क्षणादेव प्रत्यावृत्त्य पुनः व्यज्ञापयत्-'देव! तानि कोशे शीर्णानि फलानि, तेषु च रश्मिज्वालाऽऽकुलान् रत्नराशीन् पश्यामि।' तदाकर्ण्य सन्तुष्टः तान् मणीन् कोशरक्षिणे दत्त्वा अन्येद्युरागतं तं भिक्षुं पर्यपृच्छत्-'भिक्षो! कथमेवं धनव्ययेन नित्यं मां सेवसे? यावत् कारणं न वक्ष्यसि तावत् ते फलं न गृहीष्ये।'

इत्युक्तवन्तं तं नृपं स भिक्षुः विजनं नीत्वाऽब्रवीत् - 'वीर !

क्षिप्तवान्। भवान् यदि आदिशति चेत् तान् गवेषयित्वा आनयामि-इत्युक्तवान्। राजा तम् अकथयत् गवेषयतु इति। तदा स तत्र गत्वा क्षणानन्तरमेव प्रत्यावृत्य = आगत्य सूचितवान्। हे देव! यानि फलानि मया पूर्वं क्षिप्तानि तानि इदानीं कोशे शीर्णानि। तेषु किरणैरुद्भासितानि रत्नानि मया दृष्टानि। तत् श्रुत्वा राजा तानि सर्वाणि रत्नानि कोषाध्यक्षाय कोषागारे रक्षितुं ददौ। अन्येद्युः = अपरस्मिन् दिने यदा स भिक्षुः आगतवान् तदा नृपः तम् अपृच्छत्,भो भिक्षो! अनेन प्रकारेण बहुमूल्येन रत्नराशिना व्ययेन मम सेवाकार्यस्य किं प्रयोजनम् इति। अद्य पूर्वं एतस्य कारणं भवान् कथयतु तदनन्तरमेव अहं तव फलं ग्रहीष्यामि नान्यथा।

एवं कथयन्तं तं राजानं स भिक्षुः विजनम् = एकान्ते नीतवान्। तदा स

राजा के वचन को सुनकर कोषाध्यक्ष भयभीत हो गया। उसने राजा से कहा-हुजूर! मैंने वे पूरे-पूरे फल खिड़की से बाहर फेंक दिये थे। यदि आप आज्ञा दें तो मैं उन फलों को खोजकर ले आता हूँ। राजा ने उसे से कहा-हां सब फलों को ढूंढ कर लाओ। तब वह (भण्डारी) वहां जा कर और कुछ ही क्षणों में पुनः लौट कर बताने लगा-हे देव! जो फल मैंने फेके थे, वे अपने छिलके में ही नष्ट हो गये हैं, लेकिन उन में चमकती हुई मणियों को मैंने देखा है। यह सुनकर राजा ने उन सभी मणियों को मंगवा कर भण्डारी को उन्हें कोषागार में रखने के लिए दिया। दूसरे दिन जब वह भिखारी आया तब राजा ने उससे पूछा- हे भिक्षु! इस प्रकार बहुमूल्य रत्नराशि को व्यय करके तुम्हारा मेरी सेवा करने का क्या प्रयोजन है? आप इस कारण को बताइये तभी मैं आपका फल लूंगा, अन्यथा नहीं।

इस प्रकार कहते हुए उस राजा को भिखारी एकान्त स्थान में ले गया और बोला—हे वीर मुझे अपने कुछ काम के लिए सहायक की जरुरत है। आप

किमपि साधनं साचिव्यसापेक्षमस्ति, तत्र वीरेन्द्रेण त्वया क्रियमाणं सहाय्यमर्थये।' इति श्रुत्वा राजा 'तथा' इति तस्य सहाय्याय प्रत्यपद्यत। ततः स श्रमणस्तुष्टः पुनस्तं नृपमवादीत् - 'प्रभो ! अस्याम् आगामिन्यां कृष्णचतुर्दश्यां निशाऽऽगमे इतो महाश्मशानं गत्वा वटतरोरधः स्थितस्य मे सकाशं त्वया गन्तव्यम्' इति। ततस्तेन राज्ञा 'बाढमेवं करिष्यामि' इति अभिहिते स क्षान्तिशीलो भिक्षुः प्रहृष्टः स्वं निलयं ययौ।

अथाऽऽगतायां कृष्णचतुर्दश्यां स महासत्त्वो नरपतिः भिक्षोस्तां प्रार्थनां प्रतिपन्नां स्मरन् प्रदोषे नीलवसनेन समलङ्कृतशिराः

तम् अवोचत्- हे वीर ! मम किमपि कार्यं कर्तुं सहायकस्य अपेक्षा वर्तते। भवान् वीरेषु प्रमुखोऽस्ति। मम क्रियमाणे कार्ये साहाय्यं करोतु इति अभ्यर्थये। राजा तस्य वचनं श्रुत्वा स्वीकृतिं प्रकटयामास। स भिक्षुः सन्तुष्टो जातः। हर्षितः सन् स पुनरब्रवीत्–स्वामिन्! अस्याम् आगामिन्यां कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ इतः महाश्मशानं गमनीयम्। तत्र वटवृक्षस्य अधः अहं तिष्ठामि। मम समीपं भवान् अपि तिष्ठेत् इति। ततः राजा उक्तवान् बाढम्। अहं तथैव करिष्यामि इति। तदनन्तरं क्षान्तिशीलो नामा भिक्षुः प्रहृष्टः = प्रसन्नवदनः सन् स्व गृहं ययौ = गतवान्।

अथ = एतदनन्तरं, आगतायां कृष्ण चतुर्दश्यां = सम्प्राप्तायां कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ, स महासत्त्वो = बलशाली, नरपतिः = राजा, भिक्षोः = याचकस्य, तां = पूर्वोक्तां, प्रार्थनाम् = याचनां, प्रतिपन्नां = स्वीकृतां, स्मरन् = भावयन्,प्रदोषे

वीरों में श्रेष्ठ हैं। मेरे किये जाने वाले काम में सहायता करें। यही मेरी प्रार्थना है। राजा ने उसकी बात सुनकर स्वीकृति दे दी। वह भिखारी सन्तुष्ट हो गया। हर्षित होकर फिर बोला–हे स्वामी आगामी कृष्ण चतुर्दशी की रात में यहां से महाश्मशान जाना होगा। वहां वट वृक्ष के नीचे मैं रहूंगा, मेरे ही पास आपको भी रहना होगा। तब उस राजा ने कहा–ठीक है। मैं वैसे ही करुँगा। उसके पश्चात् क्षान्तिशील नाम का भिक्षु प्रसन्न होकर अपने घर चला गया।

उसके बाद कृष्ण चतुर्दशी के आने पर वह पराक्रमी राजा भिक्षु की उस शरणागति रूपी प्रार्थना को याद कर के रात में काले कपड़े से सिर को ढक कर

खड्गपाणिरलक्षितः तत् महाश्मशानमगात्। गत्वा इतस्ततोऽन्विष्यन् वटतरोरधः स्थितं तं मन्त्रन्यासं कुर्वाणं भिक्षुं दृष्ट्वा समुपेत्य च जगाद- 'भिक्षो ! एषोऽस्मि आगतः, किन्ते करवाणि ? वद।' तदाकर्ण्य स भिक्षुर्नृपं दृष्ट्वा हृष्टः प्रोवाच - 'राजन् ! यदि प्रसादस्ते कर्तव्यः, तदा इतो दक्षिणामुखं गत्वा एकाकी विदूरे यं शिंशपातरुं द्रक्ष्यसि, तस्मिन्

= सान्ध्यवेलायां, नीलवसनेन = श्यामवस्त्रखण्डेन, समलङ्कृतशिरा = समलंकृतं विभूषितं शिरः यस्य सः आवृतमस्तकः सन्। खड्गं पाणौ यस्य सः, असिहस्तः, अलक्षितः = प्रच्छन्नः सन् तत् = पूर्वोक्तं, महाश्मशानम् अगात् = अगच्छत्। तत्र गत्वा = समुपेत्य, इतस्ततः अन्विष्यन्, वटतरोरधः = वटवृक्षस्य अधः स्थितम् = उपविष्ट तं, मन्त्रन्यासं कुर्वाणं =मन्त्रोच्चारपूर्वकं पूजनं कुर्वाणं, भिक्षुं याचकं दृष्ट्वा समुपेत्य = समीपं उपगम्य, जगाद = अब्रवीत्–भिक्षो = हे याचक!, एषोऽस्मि, आगतः = अहं स्ववचनानुसारम् अत्र सम्प्राप्त इत्यर्थः। किं ते करवाणि = तव किं कार्यं साधयामि? वद = तत्कथय।

तदाकर्ण्य = तच्छ्रुत्वा स भिक्षुः, नृपं = राजानं दृष्ट्वा हृष्टः = प्रसन्नः सन्, प्रोवाच = उक्तवान्। राजन्! यदि प्रसादस्ते कर्तव्यः = यदि भवान् मे हितं कर्तुम् आगतवान्, तदा = तर्हि इतः, दक्षिणामुखं = दक्षिण दिशायां गत्वा = सम्प्राप्य, एकाकी = अन्येन केनापि विना स्वयं विदूरे = दूरस्थं तं, शिशपातरुं = तन्नामकं वृक्षं द्रक्ष्यसि = अवलोकयिष्यति, तस्मिन् वृक्षे, प्रलम्बितो = लम्बमानः, कोऽपिमृतः = गतप्राणः तिष्ठति। तं = शवम्, इह = ममपार्श्वे, आनीय = नीत्वा, मे = मम, साहाय्यं = सहायतां, कुरु = सम्पादय। तदाकर्ण्य = तच्छ्रुत्वा

हाथ में तलवार लेकर, पहचाना न जाता हुआ उस महाश्मशान में गया। वहां जाकर इधर-उधर खोजता हुआ वटवृक्ष के नीचे मन्त्र पढ़ते हुए उस भिक्षु को देखा और उसके समीप जाकर बोला–हे भिक्षुक! मैं आ गया हूँ। तुम्हारा क्या काम करूँ? बताओ।

यह सुनकर वह भिक्षु राजा को देख कर प्रसन्न होता हुआ बोला–राजन्! यदि आप मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं तो यहां से दक्षिण दिशा की ओर अकेले

प्रलम्बितो मृतः कोऽपि तिष्ठति, तमिहानीय मे साहाय्यं कुरु।'

तदाकर्ण्य स वीरो नृपतिः 'तथा' इति उक्त्वा सत्यसङ्गरः दक्षिणां दिशमालम्ब्य तत्र प्रययौ। कथञ्चिच्च तेन श्मशानमार्गेण गच्छन् विदूरे तं शिंशपातरुं प्राप्य तदुपरि लम्बमानं शवमेकमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा तं तरुम् आरुह्य छिन्नरज्जुः तं भूमौ अपातयत्। पातितश्च सः अकस्मात् जीवित इव भृशं चक्रन्द।

ततोऽसौ राजा अवरुह्य कृपया तज्जीविताकाङ्क्षी यावत् तस्य अङ्गानि परामृशत्, तावत् स शवः अट्टहासमकरोत्। ततः स राजा तं

स वीरो नृपतिः = राजा, तथा इति उक्त्वा सत्यसङ्गरः = सत्यप्रतिज्ञः, दक्षिणां दिशम् आलम्ब्य = अभिमुखीभूय, तत्र प्रययौ = गतवान्। कथञ्चित् = येन केन प्रकारेण तेन श्मशानमार्गेण गच्छन्, विदूरे = किञ्चिद् दूरे तं शिंशपातरुं = वृक्षं प्राप्य, तदुपरि = तस्योपरि लम्बमानं, शवम् = मृतम् एकम्, अद्राक्षीत् = अपश्यत्। तमवलोक्य तरं = वृक्षम् आरुह्य छिन्नःरज्जुः यावत् सः तं रज्जुं कर्तयित्वा तं भूमौ = पृथिव्याम् अपातयत्। पातितः सन् स = शवः, अकस्मात् जीवित इव = प्राणवान्, इव भृशम् = अतिशयं, चक्रन्द = रुरोद।

ततः = तदनन्तरं, स राजा वृक्षात् अवरुह्य = अवतरितः, सन् यावत्, तस्य अङ्गानि परामृशत् = स्पर्शमकरोत्, तावत् स शवः अट्टहासं = उच्चैः

जा कर कुछ दूर में एक शीशम का पेड़ देखेंगे। उसमें लटका हुआ कोई मरा हुआ व्यक्ति है, उसको यहाँ ला कर मेरी सहायता करो।

यह सुनकर उस वीर राजा ने ठीक है–ऐसा कहा। सत्य प्रतिज्ञा वाला वह राजा दक्षिण दिशा की ओर गया, किसीं प्रकार श्मशान के रास्ते से जाता हुआ कुछ दूर पर उसने शिंशपा का वृक्ष मिला, उस पर लटके हुए शव को देखा। तब वह उस वृक्ष पर चढ़ गया और उसकी रस्सी काट कर शव को जमीन में गिरा दिया। गिराये जाने पर वह एकाएक जीवित व्यक्ति की तरह जोर-जोर से रोने लगा।

तब राजा पेड़ से उतर कर दया से उसके जीवन की आकांक्षा करता हुआ जब उसके अंगों को सहलाने लगा, तब उस शव ने बड़ी जोर का

वेतालाधिष्ठितं मत्वा- 'कथं हससि? एहि, गच्छावः' इति निर्भयं यावत् ब्रवीति, तावत् तं वेतालं न भूमौ समवैक्षत ऐक्षत च तस्यैव तरोरुपरि यथापूर्वं लम्बमानम्।

ततो भूयोऽपि तरुमारुह्य स राजा यत्नतः तं शवमवारोहयत्। वीराणां चित्तं वज्रादपि अखण्डितम् अकम्पयम् । ततः तं वेतालाधिष्ठितं

हासम्, अकरोत् = कृतवान्। ततः स राजा, तं शवं बेतालाधिष्ठितं = भूतावेशितं, मत्त्वा = ज्ञात्वा "कथं हससि? एहि (आवां) गच्छावः" इति निर्भयं = भयेन रहितं यावद् ब्रवीति = कथयति, तावत् तं वेतालं भूमौ = पृथिव्यां, न समवैक्षत = अद्राक्षीद् इत्यर्थः। (स राजा तं वेतालं) तस्य एव शिंशपातरोः उपरि यथापूर्वं = पूर्ववत् लम्बमानम्, ऐक्षत = अपश्यत्।

ततः = तदनन्तरं, भूयोऽपि = पुनरपि, तरुमारुह्य स राजा यत्नतः = प्रयासपूर्वकं तं शवम्, अवारोहयत् = अवतारयामास। वीराणां = पराक्रमशालिनां, चित्तं = मनः, वज्रादपि = कुलिशादपि, अखण्डितम् = न भेद्यम्, अकम्प्यम् = न कम्पनशालि भवतीति भावः। ततः = तस्मात् तरोः तं वेतालाधिष्ठितं = भूताविष्टं, शवं = मृतशरीरं स्कन्धम्, आरोप्य = स्थापयित्वा, मौनेन = निःशब्देन, गन्तुं = यातुम्, उपचक्रमे = आरेभे, यान्तं = गच्छन्तं तं शवाधिष्ठितो वेतालः तं राजानं = नृपम्, अब्रवीत् = उवाच - राजन् = भो भूपते, ते = तव,

---

ठहाका लगाया। तब राजा ने समझा कि यह शव भूतावेशित है (अर्थात् इसमें भूत (बेताल) का आवेश है) और उससे कहा—क्यों हंसते हो? आओ चलते हैं।

ऐसा जब तक निर्भीक होकर उसने कहा तब तक उस वेताल को पृथ्वी पर नहीं देखा, उसी पेड़ पर उसी प्रकार लटका हुआ देखा।

तत्पश्चात् राजा ने पुनः उस वृक्ष पर चढ़कर उस शव को उतारा। वीरों का हृदय वज्र से भी नहीं टूटता और न कांपता है। तब उस वेताल (भूत) से अधिष्ठित मुर्दे को कंधे पर रख कर (वह राजा) चुपचाप जाने लगा। जाते हुए

शवं स्कन्धम् आरोप्य मौनेन गन्तुम् उपचक्रमे। यान्तश्च शवाधिष्ठितो वेतालस्तं राजानमब्रवीत्–

'राजन् ! अध्वविनोदाय कथामाख्यामि ते शृणु' इति।

अध्वविनोदाय = मार्गे श्रमापनोदाय कथां, आख्यामि = कथयामि, शृणु = आकर्णय इति।

उस (राजा से) शव के अन्दर बैठा हुआ वेताल बोला–

हे राजन् रास्ते के परिश्रम (थकान) को दूर करने के लिए तुम्हें एक कथा कहता (सुनाता) हूँ, सुनो।

मन्दारवती - ब्राह्मणत्रयोपाख्यानम्

अस्ति कालिन्दीतटे ब्रह्मस्थलाभिधः कश्चिदग्रहारः। तत्र अग्निस्वामीति समभवत् कश्चित् वेदपारगो विप्रः। तस्य अतिरूपवती मन्दारवती नाम कन्यका अजनि, यां नवामनर्घलावण्यां निर्माय विधिर्नियतं निजं स्वर्गनारीपूर्वनिर्माणकौशलं जुगुप्सते।

तस्यां शैशवातिक्रान्तायां कान्यकुब्जात् समसर्वगुणोपेतास्त्रयो

कालिन्दीतटे = यमुनायाः तीरे, ब्रह्मस्थलाभिधः = ब्रह्मस्थलसंज्ञकः कश्चिद् अग्रहारः = ब्राह्मणानां निवासभूमिः (ग्रामः) आसीत्। तत्र = तस्मिन् ग्रामे अग्निस्वामीति नामकः, कश्चित् = एकः, वेदपारगः = वेदानां पारं गच्छतीति वेदपारगः वेदज्ञः इत्यर्थः, विप्रः = द्विजः आसीत्। तस्य विप्रस्य अतिरूपवती = अतीवसौन्दर्यशालिनी मन्दारवती नाम = नाम्नी कन्यका सुता अजनि = जाता। यां नवम् = अद्भुतं, अनर्घम् = अमूल्यं च लावण्यं सौन्दर्यं यस्या सा तां, अद्भुतामूल्यसौन्दर्यवतीं। निर्माय = सृष्ट्वा, विधिः = ब्रह्मा प्रजापतिः, नियतं = निश्चितं, स्वर्गनारी = स्वर्गेस्थिताः नार्यः देव्यः, तासां पूर्वं पूर्वं विहितं यन्निमणि- कौशलं = सृष्टि नैपुण्यं तं जुगुप्सते = न बहु मन्यते, निन्दतीत्यर्थः।

तस्यां = मन्दारवत्यां, शैशवातिक्रान्तायां = शैशवमतिक्रान्ता, तस्यां = तारुण्यमापन्नायामित्यर्थः। कान्यकुब्जात् = तन्नामनगरात्, समसर्वगुणोपेताः =

यमुना के तट पर ब्रह्मस्थल नाम की एक ब्राह्मणों की बस्ती थी। उस गाँव में अग्निस्वामी नाम का वेदों का ज्ञाता कोई ब्राह्मण रहता था। उसकी मन्दारवती नाम की अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। जिस अद्भुत और अमूल्य सौन्दर्य शालिनी की रचना कर ब्रह्मा ने अपने स्वर्ग में स्थित देवांगनाओं के निर्माण कौशल को भी अधिक नहीं माना।

उस मन्दारवती के बचपन के बीत जाने पर (युवती भाव प्राप्त करने पर)

ब्राह्मणदारकाः समाययुः। तेषामेकैकः आत्मार्थं तत्पितरं तामयाचत। तत्पिता प्राणव्ययेऽपि तामन्यस्मै दातुमनिच्छन् तन्मध्यादेकस्मै दातुं मतिमकरोत्।

सा तु कन्या अन्ययोर्बाधात् भीता कियन्तं कालं न पाणिमग्राहयत्। ते च त्रयोऽपि तस्याः मुखेन्दुनिक्षिप्तदृष्टयः चकोरव्रतमालम्ब्य दिवानिशं तत्रैव तस्थुः।

समं समानरूपेण सर्वैः गुणैः उपेताः युक्ताः, ब्राह्मणदारकाः = विप्रपुत्राः, समाययुः = समम् एव सहैव आगच्छन्। तेषां त्रयाणाम् एकैकः = प्रत्येकं आत्मार्थं स्वस्य कृते, तत्पितरं = तस्याः पितरं, ताम् = कन्याम्, अयाचत = प्रार्थयत। तस्याः पिता, प्राणव्ययेऽपि = जीवनाऽपगमेऽपि ताम् अन्यस्मै वराय दातुम् अनिच्छन् कथञ्चित् तन्मध्यात् तेषां त्रयाणां मध्यात् एकस्मै दातुं मतिमकरोत् = व्यचारयत्।

सा तु कन्या = मन्दारवती नाम्नी, अन्ययोः = अवशिष्टयो द्वयोः, बाधात् = निरोधजनिताद्, बाधाद् = दुःखात्, भीता = त्रस्ता, कियन्त कालं न पाणिमग्राहयत् = केनापि सह विवाहं न कृतवती। ते च त्रयोऽपि तस्या मुखेन्दु निक्षिप्तदृष्टयः = मुखम् इन्दुरिव मुखेन्दुः = मुखचन्द्रः, तस्मिन् निक्षिप्ता = निहिता दृष्टिः यैः ते, तस्या मुखचन्द्रम् अवलोकयन्त इति भावः, चकोरव्रत मालब्य = यथा चकोर नामकः खगः चन्द्रिकापानाय चन्द्रमण्डलाभिमुखम् एकाग्रभावेन तिष्ठति तथा व्रतं = नियमम्, आलम्ब्य = आश्रित्य, दिवानिशं = दिवा च, निशा च = रात्रिन्दिवम्, तत्रैव = तस्याः निकटे एव, तस्थुः = न्यवसन्।

कान्यकुब्ज (कन्नौज) नगर से समान रूप से सभी प्रकार के गुणों से युक्त तीन ब्राह्मणपुत्र आये। उनमें से प्रत्येक ने अपने लिए उस कन्या को उसके पिता से मांगा। उसके पिता ने प्राण चले जाने पर भी उसे दूसरे वर को देने की इच्छा न करते हुए, उन तीनों में से एक को उस कन्या को देने का विचार किया।

उस कन्या ने बचे हुए दो ब्राह्मणों के अवरोध से उत्पन्न दुःख के कारण कुछ दिनों तक विवाह नहीं किया। वे तीनों ही उसके चन्द्रमा के समान मुख को एक टक निहारते हुए चकोर पक्षी के समान नियम पालन करते हुए रात-दिन वहीं रहने लगे।

अथाऽकस्मात् समुत्पन्नेन ज्वरदाहेन आर्त्ता सा मन्दारवती पञ्चतामवाप। ततस्ते विप्रकुमारास्तां परासुं दृष्ट्वा शोकार्त्ताः कृतप्रसाधनां श्मशानं नीत्वा अग्निसादकुर्वन्। ततश्च तेषामेकः तत्र मठं निर्माय तद्भस्मशय्यायां भैक्ष्येण जीवन्नतिष्ठत्। द्वितीयोऽस्थीनि तस्या उपादाय भागीरथ्यां निक्षेप्तुं जगाम। तृतीयस्तु तापसो भूत्वा देशान्तराणि भ्रमितुमगात्।

स तु भ्राम्यन् तापसः वज्रालोकाभिधं ग्रामं प्राप्य कस्यापि विप्रस्य

अथ = अनन्तरम्, अकस्मात् समुत्पन्नेन, ज्वरदाहेन आर्ता = दुःखिता सा मन्दारवती पञ्चतामवाप = मृता। ततः ते विप्रकुमाराः = ब्राह्मणपुत्राः, तां परासुं = गतप्राणां दृष्ट्वा शोकार्ताः = शोकेन सन्तप्ताः सन्तः, कृतप्रसाधनां = वस्त्र माल्यादिभिः अलङ्कृत्य तां श्मशानं नीत्वा अग्निसाद्, अकुर्वन् = तस्या दाहकर्म चक्रुः इत्यर्थः। ततः = तदनन्तरं तेषां त्रयाणां विप्रकुमाराणाम् एकः तत्र मठं निर्माय तद्भस्मशय्यायां = तस्या भस्मनः शय्यायां, नित्यं भैक्ष्येण = भिक्षया लब्धान्नेन जीवन्, अतिष्ठत् = जीवितोऽभूत। द्वितीयः = अपरः तस्या अस्थीनि उपादाय = गृहीत्वा, भागीरथ्यां = गङ्गायां निक्षेप्तुं = प्रवाहयितुं, जगाम = गतवान्। तृतीयस्तु अन्यः तापसो भूत्वा = तपस्वीवेशेन देशान्तराणि = अन्य देशं, भ्रमितुं = भ्रमणार्थम्, अगात् = गतवान्।

स तु भ्राम्यन् = भ्रमणशीलः, तापसः = तपस्वी, वज्रलोकाभिधं =

इसके बाद एक दिन अकस्मात् हुए ज्वर दाह से पीडित होकर वह मन्दारवती मर गई। तब उन तीनों ब्राह्मण कुमारो ने उसे प्राण विहीन देख कर शोक से व्याकुल होकर, वस्त्र अलंकारों से उसे सजा कर, श्मशान में लेजा कर दाह कर्म किया। तत्पश्चात् उन तीनों में एक वहीं कुटिया बनाकर उसकी भस्म की शय्या में भीख मांग कर जीवित रहते हुए समय बिताने लगा, दूसरा उसकी हड्डियों को भागीरथी में प्रवाहित करने चला गया, तीसरा तापस बन कर दूसरे देशों में घूमने चला गया।

वह भ्रमण शील तपस्वी वज्रलोक नाम के गांव में पहुँचा। वहां किसी ब्राह्मण के घर का आतिथि बना। उस गृहस्वामी ने पाद्य आदि से उसका सत्कार

गृहे अतिथिरभूत्: तेन च गृहपतिना पूजितो यावत् तत्र भोक्तुं प्रावर्त्तत, तावत्तस्य एकः शिशुः रोदितुं प्रवृत्तोऽभवत्। स च शिशुः सान्त्व्यमानोऽपि यदा न व्यरंसीत् तदाऽस्य गृहिणी तं बाहावादाय ज्वलत्यग्नौ क्रुधा प्राक्षिपत्; क्षिप्त एव स कोमलाङ्गस्तत्क्षणात् भस्मसादभूत्। तदवलोक्य स तापसः सञ्जातरोमाञ्चः प्राब्रवीत् –

'हा धिक् ! कष्टं ! प्रविष्टोऽस्मि ब्रह्मराक्षसवेश्मनि।
तन्मूर्त्तं किल्विषमिदं न भोक्ष्येऽन्नमिहाधुना।।' इति

तन्नामकं ग्रामं प्राप्य कस्यापि, विप्रस्य = द्विजस्य, गृहे = सदने अतिथिः अभूत्। तेन च गृहपतिना = गृहस्वामिना, पूजितः = पाद्यादिभिः सत्कृतः यावत् तत्र भोक्तुं = अन्नं गृहीतुं प्रावर्तत = प्रवृत्तोऽभवत्, तावत्तस्य एकः शिशुः = अर्भकः, रोदितुं = क्रन्दितुं प्रवृत्तोऽभवत्। स च शिशुः सान्त्वयमानोऽपि = अनुकूलीक्रियमाणोऽपि यदा न व्यरंसीत् = विरराम, तदा गृहिणी = विप्रपत्नी तं शिशुं बाहौ = दोर्भ्याम् आदाय ज्वलत्यग्नौ = ज्वलनशीले अनले, क्रुधा क्रोधेन प्राक्षिपत् = प्रक्षिप्तवती। क्षिप्तः एव स कोमलाङ्ग = सुकुमारशरीरः, तत्क्षणात् = क्षिप्रमेव, भस्मसादभूत् = भस्मरूपोऽभवत्। तदवलोक्य = तत्सर्वं दृष्ट्वा स तापसः सञ्जातरोमाञ्चः = रोमाञ्चितः सन्, प्राब्रवीत् = उक्तवान्-

हा धिक् कष्टं = भर्त्सनार्थम् अव्ययमिदम्। प्रविष्टोऽस्मि = आगतोऽस्मि, ब्रह्मराक्षसवेश्मनि = ब्राह्मणोऽपि क्रूरकर्मणा राक्षसयोनिं गतः, तस्य गृहे। एवं विधस्य नृशंसस्य गृहम् आगतोऽस्मि इति भावः।

किया और जब तक उसने भोजन करना प्रारंभ किया तब तक उनका एक बच्चा रोने लगा, बार-बार उसे समझाने पर भी जब वहीं माना तो उसकी पत्नी ने हाथ में लेकर क्रोध के उस शिशु को जलती आग में फेंक दिया, तुरन्त हीं उसका कोमल शरीर जल कर राख हो गया। यह सब देख वह तपस्वी रोमाञ्चित हो गया और बोला—हाय धिक्कार है मैं तो ब्रह्मराक्षस के घर में आ गया हूँ। मूर्तिमान् पाप रूपी इस अन्न को अब नहीं खाऊंगा।

एवंवादिनं तमतिथिं स गृहस्थः प्रत्यवादीत् –'ब्रह्मन् ! पश्य मे पठितसिद्धस्य मृतसञ्जीवनीं शक्तिम्' इत्युक्त्वा पुस्तकमुद्धाट्य, तां विद्यां बहिष्कृत्य, अनुवाच्य च तस्मिन् भस्मनि जलमक्षिपत् ; क्षिप्तमात्रे च जले स पुत्रस्तथैव जीवन्नुदतिष्ठत् । ततः स तापसः सुनिर्वृतस्तत्र सहर्षं बुभुजे। गृहस्थोऽपि स नागदन्तके पुस्तकमवस्थाप्य, भुक्त्वैव तेन तापसेन सह रात्रौ शयनमभजत।

अथ सुप्ते गृहपतौ स तापसः स्वैरमुत्थाय शङ्कितः स्वप्रियाया

तद् = अतः इदं अन्नं-अन्नं भोजन मूर्तिवान्, किल्विषं = पापम्। पापेन एव अन्नस्य आकारः गृहीत इति भावः। एतादृशम् अन्नम् अहम् अधुना न भोक्ष्ये = न खादामि इत्यर्थः।

एवं वादिनं = इत्थं कथयन्तं तम् अतिथिं स गृहस्थः = आतिथेयः प्रत्यवादीत् = अवदत्, ब्रह्मन् = भो ब्राह्मण! पश्य मे पठितसिद्धस्य = अवलोकयतु मम मन्त्रविदः सिद्धिं = सामर्थ्यञ्च मृतञ्जीवनीशक्तिरूपम् मृत जीवन कारिणीं विद्याम् इत्यर्थः। इत्युक्त्वा पुस्तकम् उद्घाट्य, तां विद्यां बहिष्कृत्य अनुवाच्य = पठित्वा तस्मिन्, भस्मनि जलम् = तोयं प्रक्षिप्तवान्। क्षिप्तमात्रे जाते स पुत्रः तथैव जीवितः सन् उदतिष्ठत् = उत्थितोऽभूत्।

अथ = अनन्तरं, सुप्ते = शयिते, गृहपतौ = गृहस्वामिनि, स तापसः स्वैरमुत्थाय = मन्थरम् उत्थाय शङ्कितः = भीतः सन् स्वप्रियायाः मन्दारवत्या

इस प्रकार कहते हुए उस से गृहस्थ ने कहा - हे ब्राह्मण! मेरे द्वारा पढ़ कर सिद्ध की गई मृत को पुनः जीवित करने वाली शक्ति को देखिये। यह कह कर पुस्तक खोल कर, उस विद्या को निकाल कर उसको पढ़ता हुआ उसने भस्म पर जल छोड़ा। जल के छींटे पड़ते ही वह पुत्र जीवित होकर खड़ा हो गया। तब तपस्वी ने शान्त होकर प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया। गृहस्थ ताखे पर पुस्तक रखकर भोजन कर के उस तपस्वी के साथ सो गया।

गृहस्वामी के सो जाने पर वह तापस धीरे धीरे से उठा और डरता हुआ अपनी प्रिया मन्दारवती को जीवित करने के लिए उस पुस्तक को उसने उठा

मन्दारवत्या जीवनार्थं तां पुस्तिकामग्रहीत्। गृहीत्वैव तस्मात् निर्गत्य रात्रिन्दिवं व्रजन् शनैस्तत् श्मशानमासदत्; अद्राक्षीच्च सहसा तं द्वितीयम् उपस्थितं, यो हि गङ्गाऽम्भसि तदस्थि क्षेप्तुमगात्।

अथ प्राप्य च तत्रस्थं तस्या भस्मनि शायिनं तृतीयं निबद्धमठं स तापसः प्रोवाच–'मठिका त्यज्यतां भ्रातः! प्रियां तामहमुत्थापयामि' इति। ततः ताभ्यां निर्बन्धतः परिपृष्टः पुस्तिकामुद्धाट्य मन्त्रमनुवाच्य मन्त्रपूतानि जलानि तस्मिन् भस्मनि प्राक्षिपत्; क्षिप्तमात्रेषु जलेषु सा

जीवनार्थं = पुनरुज्जीवयितुं तां पुस्तिकाम् अग्रहीत् = गृहीतवान्। तदादाय तस्माद् गृहाद् निर्गत्य, रात्रिन्दिवम् = अहर्निशं, व्रजन् = गच्छन्, तत्श्मशानमासदत् = प्राप्तवानित्यर्थः। अद्राक्षीत् = अपश्यत्, च सहसा = अकस्मात् तद्, द्वितीयम् अपि उपस्थितं, यो हि गङ्गाम्भसि = गंगाजले, तदस्थि = तस्याः, अस्थि क्षेप्तुं = प्रवाहयितुम्, अगात् = गतवान् आसीत्।

अथ = अनन्तरं प्राप्य च तत्रस्थं = तत्रैव स्थितं, तस्याः = मन्दारवत्या, भस्मनि शायितं तृतीयं निबद्धमठं = निबद्धो मठो येन तं, स तापसः प्रोवाच = उक्तवान् - मठिका त्यजतां भ्रातः = भो बन्धु। मठिकां कुटीं त्यजतु, प्रियां ताम् अहं उत्थापयामि = उज्जीवयामि इत्यर्थः। ततः = तदनन्तरं ताभ्याम् उभाभ्यां विप्रकुमाराभ्यां यदा आग्रहेण सः परिपृष्टः जिज्ञासितः, तदा पुस्तिकां = ग्रन्थम् उद्घाट्य मन्त्रम् अनुवाच्य = पठित्वा मन्त्रेण पूतानि पवित्राणि जलानि तस्मिन्

लिया। उसे लेकर वहां से निकल कर रात-दिन चलता हुआ धीरे-धीरे उसी श्मशान पर पहुँचा। एकाएक उसने उस दूसरे व्यक्ति को भी देखा जो उसकी हड्डियों को गंगा जल में छोड़ने गया था।

इसके बाद वहीं पर उसके भस्म पर सोये हुए वहीं कुटिया बनाये हुए तीसरे ब्राह्मण कुमार से तापस ने कहा – "भाई उठो मठ को छोड़ दो, उस प्रिया को मैं उठाता हूँ" तब उन दोनों (द्वितीय कौर तृतीय कुमारों) ने जब उससे आग्रहपूर्वक बार-बार पूछा तो उसने पुस्तक खोल कर मन्त्र पढ़ कर मन्त्र से

मन्दारवती जीवन्ती सहसा समुत्तस्थौ। तदा सा कन्या वह्निं प्रणम्य निष्क्रान्ता पूर्वाधिकद्युतिकाञ्चनेनेव निर्मितं वपुर्बभार।

तादृशीं तां पुनर्जीवितां वीक्ष्य त्रयोऽपि ते स्मरातुराः तत्प्राप्त्यर्थमन्योन्यं कलहं चक्रुः। एकेनोक्तम्–'इयं मन्मन्त्रबलात् जीविता, तदेषा ममैव भार्या।' अपरोऽब्रवीत् – 'मदीयेन तीर्थभ्रमपुण्येन इयं जीविता, तदेषा ममैव भार्या।' तृतीयेन अभिहितं –'मया भस्मानि रक्षितानि, तत एवेयं जीविता, तस्मात् ममैवेयं प्रणयिनी' इति।

भस्मनि प्राक्षिपत् = सादृशैः जलैः भस्मनि असिञ्चद् इति भावः। क्षिप्तमात्रेषु जलेषु सा मन्दारवती जीवन्ती = प्राणवती सती सहसा = अकस्माद् उत्थितवती। तदा सा कन्या वह्निं प्रणम्य निष्क्रान्ता पूर्वाधिकद्युतिः = पूर्वस्माद् कालाद् अधिका द्युतिर्यस्य = पूर्वतोऽपि अतितरां देदीप्यमाना सती, काञ्चनेन = सुवर्णेन इव निर्मित वपुः = शरीरं, बभार = धृतवती।

तादृशीं तां = पूर्वस्मात् अपिं अधिकां द्युतिमतीं जीवितां = प्राणसारां, वीक्ष्य = अवलोक्य त्रयोऽपि ते स्मरातुराः कामाकुलाः, तत्प्राप्त्यर्थं = तां प्राप्तुं, अन्योऽन्यं = परस्परं, कलहं चक्रुः = कृतवन्तः। एकेन उक्तं = कथितं, इयं = पुरतो दृश्यमाना मन्मन्त्र बलात् = मदीयस्य मन्त्रस्य, बलाद् = उपायेन जीविता, तदेषा ममैव भार्या = पत्नी। अपरः = अन्यः, अब्रवीत् = अकथयत् मदीयेन = मम, तीर्थभ्रमणपुण्येन = तीर्थेषु काशीप्रयागादिषु, भ्रमणेन = विचरणेन यत्पुण्यं तेन इयं = कन्या, जीविता, तस्माद्, एषा मम भार्या इति। तृतीयेन

अभिमन्त्रित जल को उसके भस्म पर डाला। जल के पड़ते ही वह मन्दारवती जीवित होकर उठ खड़ी हुई। तब वह कन्या अग्नि देव को प्रणाम करती हुई बाहर निकली, वह पहले की अपेक्षा अधिक देदीप्यमान थी, मानो सोने से बने हुए शरीर को धारण की हो।

वैसी उस सुन्दरी को पुनः जीवित देख कर वे तीनों कामातुर होकर उसको पानें के लिए एक दूसरे से झगड़ने लगे। एक ने कहा–यह मेरे मन्त्र से बल से पुनः जी उठी है, इस लिए यह मेरी पत्नी है, दूसरे ने कहा मेरे तीर्थ भ्रमण के

हे महीपते ! तेषां विवादनिर्णये त्वमेव शक्तः; तत् ब्रूहि, कन्याऽसौ कस्य एतेषां भार्या भवितुमर्हति? यदि जानन् मृषा वदिष्यसि, तदा ते मूर्द्धा विदलिष्यति।'

इति वेतालदाकर्ण्य स राजा एवम् अभ्यधात्—'यः क्लेशेन मन्त्रमानीय एनामजीवयत् स खलु पितृकार्यकरणात् न पतिः। यश्च

अभिहितं = प्रोक्तं, मया भस्मानि रक्षितानि, ततः एव इयं जीविता प्राणमयी सञ्जाता, तस्मात् इयं कन्या मम एव प्रणयिनी = प्रेमिका अस्ति।

हे महीपते! = भो राजन्! तेषां त्रयाणां विवादनिर्णये = वाक्कलहस्य निर्णयं कर्तुं त्वमेव शक्तः = समर्थः। तत् = तस्मात्, ब्रूहि = कथय, कन्याऽसौ = एषा बालिका, एतेषां = त्रयाणां ब्राह्मणकुमाराणां मध्ये कस्य = एकस्य, भार्या = पत्नी भवितुमर्हति। यदि जानन् = अवगच्छन् अपि मृषा = मिथ्या, वदिष्यति = कथयिष्यति, तदा ते = तव, मूर्द्धा = मस्तकं, विदलिष्यति = स्फुटिष्यति खण्डं खण्डं भविष्यतीति भावः।

इति = एवं, वेतालाद् आकर्ण्य = श्रुत्वा स राजा एवम् = इत्थम्, अभ्यधात् = अब्रवीत् यः क्लेशेन = श्रमेण मन्त्रम् आनीय एनाम् अजीवयत् = पुनरुजीवनम् अकरोत्, स पितृकार्यकरणात् = जन्मदानात् न पतिः भवितुम् अर्हतीति भावः। यश्च तस्या अस्थीनि गङ्गायां क्षेप्तुं गत स पुत्रकार्यकरणात्। और्ध्वदेहिककार्यकरणात् न पतिः। यस्तु तद् = तस्याः भस्मशय्या श्मशाने एव समाश्लिष्य = आलिङ्ग्य, तपश्चचार = तपस्याम् अकरोत्, स एव प्रणयिकार्यकरणात् =

पुण्य से यह जीवित हुई, अतएव मेरी पत्नी है।

तीसरे ने कहा – मैने इसकी राख को सुरक्षित रखा, उसी भस्म से इसे नया जीवन मिला इसलिए यह केवल मेरी प्रेमिका है।

हे राजन्! उन तीनों के झगड़े का निर्णय करने में तुम्ही समर्थ हो। तो बताओ – यह कन्या इन तीनों में किसी पत्नी होने योग्य है? यदि जानते हुए भी तुम झूठ बोलोगे तो तुम्हारा सिर फट जायेगा।

इस प्रकार बेताल से सुन कर वह राजा इस प्रकार बोला – जिसने

तस्या अस्थीनि गङ्गायां क्षेप्तुं गतः, स पुत्रकार्यकरणात् न पतिः। यस्तु तद्भस्मशय्यां समाश्लिष्य तपश्चचार श्मशान एव, स एवास्याः प्रणयिकार्यकरणात् पतिर्भवितुमर्हति' इति।

इत्थं नृपात् त्रिविक्रमसेनादाकर्ण्य स वेतालस्य स्कन्धादतर्कितः स्वपदं प्रयात्। राजा च भिक्षुकार्यार्थं पुनस्तं प्राप्तुं मनो बबन्ध। प्राणात्ययेऽपि महासत्त्वाः प्रतिपन्नमर्थम् असाधयित्वा न निवर्त्तन्ते।

ततः स त्रिविक्रमसेनो नृपतिः पुनस्तस्य शिंशपातरोर्मूलं गत्वा

बल्लभस्य कार्यस्य अनुष्ठनात्, तस्याः = कन्यकायाः पतिः भवितुम् अर्हति।

इत्थं = नृपात् राज्ञः, त्रिविक्रमसेनाद् आकर्ण्य = श्रुत्वा स वेतालः ततस्कन्धाद् अतर्कितः = सहसा एव, स्वपदं = स्वस्थानं शिंशपावृक्षं, प्रायात् = प्राप। राजा = नृपः, भिक्षुकायार्थं = भिक्षोः कार्यं सम्पादयितुं पुनस्तं = वेतालं प्राप्तुं मनो बबन्ध = दृढीचकार। प्राणात्ययेऽपि = प्राणानां संकटापन्नाम् अपि महासत्त्वाः = महासाहसिकाः प्रतिपन्नं स्वीकृतम्, अर्थम् = उद्देश्यम्, असाधयित्वा = असम्पाद्य न निवर्तन्ते = न विरमन्ति।

ततः = तत्पश्चात् त्रिविक्रमसेनो नृपतिः = तन्नामको राजा, पुनः तस्य

परिश्रम पूर्वक मन्त्र ला कर उसको जीवित किया, उसने पिता का कार्य किया अर्थात् जन्म दान दिया, अतः वह इसका पति नहीं हो सकता। जो उसकी हड्डयों को गंगा जी में फेंकने गया उसने उसके और्ध्वदैहिक कार्य किया, अतः पुत्र के द्वारा किये जाने योग्य कार्यों को करने से वह उसका पति नहीं है, जो उसकी भस्म की शय्या का शमशान में ही आलिंगन करके तपस्या करता रहा वही प्रेमी का कार्य करने के कारण उसका पति हो सकता है।

इस प्रकार राजा त्रिविक्रम सेन से सुन कर वह वेताल उसके कन्धे से सहसा अपने स्थान पर चला गया। राजा ने भिक्षु के कार्य को पूरा करने के लिये पुनः उसको पाने का मन बनाया। प्राणों के चले जाने पर भी महान् साहसी लोग स्वीकार किये हुए उद्देश्य को पूरा किये बिना रुकते नहीं हैं।

तब त्रिविक्रमसेन राजा पुनः उसी शीशम के पेड़ के नीचे जा कर, रात में

निशि तं मुक्ताट्टहासं शवाधिष्ठितं वेतालं प्राप्य निष्कम्पः तथैव स्कन्धमारोप्य तस्य भिक्षोः सकाशमुदचलत्। तञ्च चलन्तम् अंसस्थः स वेतालः पुनरब्रवीत्–'राजन्! दूराचारस्य अस्य भिक्षोः कृते कोऽयं ते प्रयासः? निष्फले अमुष्मिन् प्रयत्ने तव विवेको न दृश्यते; यद् भवतु, त्वद्भक्त्या तवाध्वश्रमविनोदिनीमपरामेकां कथां कथयामि। श्रूयताम्--

---

शिंशपातरोर्मूलं गत्वा निशि = रात्रौ तं मुक्ताट्टहासं = मुक्तो विस्तारितः अट्टहासः येन सः तम् = उच्चैर्हसन्तं शवाधिष्ठितं वेतालं प्राप्य = आसाद्य, निष्कम्पः = निर्भयः तथैव स्कन्धमारोप्य तस्य भिक्षोः सकाशं = समीपं, उदचलत् = उपागच्छत्। तं च चलन्तं = गच्छन्तं, असंस्थः = स्कन्धे स्थितः स वेतालः पुनः अब्रवीत् = अवोचत् – राजन्! दूराचारस्य दूरे आचारः यस्य स तस्य, यस्य कार्यं दूरे अस्ति तस्य भिक्षोः कृते कोऽयं ते प्रयासः = तव प्रयत्ने तव विवेको न दृश्यते। यद् भवतु, त्वद् भक्त्या = तव भक्तिमवलोक्य तव अध्वश्रमविनोदिनीम् = मार्गपरिश्रमनिवारीणम् एकाम् अपरां कथां कथयामि। श्रूयताम्–

ठहाका मार कर हंसने वाले मुर्दे में आवेशित उस बेताल को पाकर, विना कांपे उसी प्रकार कन्धे पर लटक कर भिक्षु के पास जाने लगा। उसको चलते हुए जान कर कन्धे पर बैठा वेताल फिर बोला –

राजन्! जिसका कार्य दूर है ऐसे भिक्षु को लिए तुम्हारा यह प्रयास क्यों? निष्फल (वेकार के) प्रयत्न करने में तुम्हारा विवेक दिखाई नहीं दे रहा है। जो भी हो, तुम्हारी भक्ति से प्रभावित होकर तुम्हारे रास्ते की थकान मिटाने के लिए एक दूसरी कथा कहता हूँ, सुनो –

शूद्रकवीरवरोपाख्यानम्

अस्ति शोभावती नाम यथार्थनाम्नी काऽपि नगरी। तस्यामभूत् शूद्रको नाम प्रभूतपराक्रमो महाप्रतापो नृपतिः। यस्य जयिनः प्रतापानलोऽनवरतं बन्दीकृतारिवनिताधृतचामरमारुतैः ज्वलति स्म। येन च अलुप्तधर्मचरणा स्फीता वसुन्धरा रामादीनपि भूपतीन् विसस्मार।

कदाचित् तं महीपालं प्रियशूरं सेवितुं मालवात् कश्चित् वीरवरो

शोभावती नाम यर्थाथनाम्नी = यथार्थम् अनुरूपं नाम यस्या सा काऽपि = एका नगरी आसीद् इत्यर्थः। तस्याम् अभूत् शूद्रको नाम प्रभूतपराक्रमः = प्रभूतः पराक्रमः यस्य सः = बहुलपराक्रम इत्यर्थः, महाप्रतापः = महान् प्रतापः यस्य सः- अतिशयितपराक्रमी, नृपतिः = नराणां पतिः, स्वामी–राजेति यावत्। यस्य जयिनः- जयति शत्रून् इति जयी तस्य प्रतापानले प्रताप एव अनलः अनवरतं = सततं, वन्दी= कृतारिवनिताधृतचामरमारुतैः = बन्दीकृताभिः, अरिवनिताभिः = शुत्रूणां स्त्रीभिः धृतानां करेषु अवलम्बितानां चामराणां बाल व्यजनानां मारुतैः ज्वलति दहति स्म। येन च अनुप्तधर्मचरणा = न लुप्तं धर्माचरणं पुण्यानुष्ठानं यस्यां सा वसुन्धरा = पृथ्वी रामादीन्, अपि भूपतीन् = राज्ञः, विसस्मार = विस्मृतवती इत्यर्थः।

कदाचित् = एकदा तं महीपालं = राजानं, प्रियशूरं = प्रियाः शूरा यस्य स तं, सेवितुं = सेवां कर्तुं, मालवात् = तन्नामकाद् देशात् कश्चिद् वीरवरो नाम

शोभावती नाम की यथार्थ नाम वाली कोई नगरी थी। जिसमें अत्यन्त पराक्रमी शूद्रक नाम का राजा राज्य करता था। शत्रु को जीतने वाले जिस राजा का प्रताप रूपी अग्नि बन्दी बनाई गई शत्रुको की स्त्रियों के द्वारा हाथ से डुलाये गये चँवर की हवा से जलता था। (अर्थात् जब शत्रुओं की बन्दिनी पत्नियां अपने हाथों में उसे चंवर डुलाती थी तो उसकी प्रताप रूपी आग दहकती थी) जिस कारण जहां धर्माचरण का कभी लोप नहीं हुआ ऐसी पृथ्वी राम आदि राजाओं को भी भूल गयी।

एक बार शूरवीरों को चाहने वाले उस राजा के पास मालवा से वीरबर

नाम क्षत्रियः समागात्। तस्य धर्मवती नाम भार्या, शक्तिधरो नाम सुतः, वीरवतीनाम्नी कन्या चासीत्। सेवापरिच्छदस्तस्य त्रयमेव, कट्यां कृपाणिका, करे तरवारिः, अपरे च करे चर्म। एतावन्मात्रपरिच्छद-परीवारः स प्रत्यहं तं राजानं दीनारशतपञ्चकं वेतनं प्रार्थयामास। राजा च तम् आकारसूचितोदारपौरुषं मत्वा, तस्मै यथेप्सितां वृत्तिं ददाति स्म, स्थापयति स्म च कौतुकात् प्रच्छन्नं चारान् तत्पृष्ठतः 'किमेभिः प्रभूतैर्वेतनैरेष करोति?' इत्यन्वेष्टुम्।

क्षत्रियः समागात् = सम्प्राप्तः। यत्र धर्मवती नाम भार्या, शक्तिधरो नाम पुत्रः, वीरवती नाम्नी कन्या च आसीत्। सेवापरिच्छदः = सेवार्थं परिच्छदः, परिचरणाय उपकरणम् इत्यर्थः। तस्य = वीरवरस्य त्रयम्, एव = एते त्रयः तावत्, कट्यां कृपाणिका = च्छुरिकेति यावत्। करे = हस्ते, तरवारिः = खड्गः, करे चर्म = खेटम्। एतावन्मात्रपरिच्छदपरीवारः = एतावदेव परिच्छदः उपकरणं तेन व्रियते यः स तादृशः, स प्रत्यहं = प्रतिदिनं, राजानं = नृपं, दीनारशतपञ्चकं = दीनाराणां स्वर्णमुद्राणां शतपञ्चकं = पञ्चशती, प्राथर्यामास = अयाचत। राजा च तं = वीरवरं आकारसूचितोदारपौरुषं = आकारेण आकृत्या एव सूचितं = प्रकटीकृतम्, उदारं = महत्, पौरुषं = पराक्रमो येन सः तम्, मत्त्वा = विज्ञाय, तस्मै यथेप्सितां वृत्तिम् = अभीष्टं वेतनं, ददातिस्म = ददौ, स्थापयति स्म = अस्थापयत् च कौतुकात् = कुतूहलेन, प्रच्छन्नं = गुप्तं, चारान् = गुप्तचरान् तत्पृष्ठतः = किमेभिः प्रभूतैः वेतनैः एषः करोति = एतावन्तं प्रचुरं धनं कथं व्ययीकियतेऽनेन इति भावः। इत्यन्वेष्टुम् = इति विज्ञातुम्।

नामक एक क्षत्रिय आया। उसकी धर्मवती नाम की पत्नी, शक्तिधर नाम का पुत्र तथा वीरवती नाम की कन्या थी। सेवा कार्य के लिए उसके पास तीन ही उपकरण थे। कमर में छुरी, हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल। इतने उपकरणों से सुसज्जित हो उसने राजा से प्रतिदिन पाँच सौ दीनार वेतन के रूप में मांगा। राजा ने उसकी आकृति से उसके महान पराक्रम का अनुमान कर उसे उसकी इच्छा के अनुरूप वेतन दिया और उसके पीछे गुप्तचर यह पता लगाने के लिए लगा दिये कि-यह इतने अधिक वेतन से क्या करता है।

स च वीरवरः प्रातः राजदर्शनं कृत्वा, मध्याह्ने धृतायुधः तस्य सिंहद्वारे स्थित्वा च स्ववृत्तिलब्धानां दीनाराणां शतं गार्हस्थ्यनिर्वाहाय भार्याया हस्ते प्रादात्। अपरेण च शतेन वस्त्रम् अङ्गरागं ताम्बूलादीनि च क्रीणाति स्म। अपरञ्च शतं स्नात्वा विष्णोः शिवस्य च पूजार्थं विनियुयोज। अन्यच्च शतद्वयं विप्रेभ्यः दरिद्रेभ्यश्च प्रादात्। एवं विभज्य प्रत्यहं तानि पञ्चशतानि स व्ययीचकार। ततश्च अग्निकार्यादिकं विधाय भुक्त्वा च निशि एकाकी तदेव सिंहद्वारं धृतकृपाणचर्मा प्रत्यहं तस्थौ।

स च वीरवरः प्रातः राजदर्शनं कृत्वा = प्रातः काले राजानं द्रष्टुम् आगत्य, मध्याह्ने तस्य राजभवनस्य प्रधानद्वारि स्थित्वा, स्ववृत्तिलब्धानां=स्ववेतनरूपेण प्राप्तानां दीनाराणां शतं गार्हस्थ्यनिर्वाहाय = गृहस्थस्य कर्म परिपूर्तये भार्यायाः= पत्न्याः हस्ते प्रादात् = ददौ, अपरेण च शतेन वस्त्रम् = परिधानम्, अङ्गरागं चन्दनागरुप्रभृतिपदार्थं ताम्बूलादीनि च क्रीणाति स्म। अपरं च शतं स्नात्वा = स्नानं विधाय विष्णोः शिवस्य पूजार्थम् = आराधनाय, विनियुयोज = विनियोगं कृतवान्। अन्यच्च शतद्वयं द्विशतपरिमितान् दीनारान् विप्रेभ्यः = ब्राह्मणेभ्यः, दरिद्रेभ्यः = निर्धनेभ्यः, प्रादात् = ददौ। एवं विभज्य = यथायथं विभागं विधाय प्रत्यहं = प्रतिदिनं तानि पञ्चशतानि = धनानि स व्ययीचकार = विससर्ज। ततश्च = तदनन्तरम् = अग्निकार्यादिकं, विधाय = सायन्तनं होमादिकं कृत्वा भुक्त्वा = उपभुज्य च निशि = रात्रौ एकाकी तदेव सिंहद्वारं = मुख्यद्वारं, धृतकृपाणचर्मा = धृते कृपाणचर्मणी असिफलके येन सः तादृशः सन् प्रत्यहं = प्रतिदिनं, तस्थौ = अवर्तत।

वह वीरवर प्रातःकाल राजा का दर्शन करके, दोपहर में राजभवन के सिंह द्वार में पहरा देकर अपने वेतन से प्राप्त दीनारों में से सौ दीनार गृहस्थी के निर्वाह के लिए अपनी पत्नी को देता था। दूसरे सौ दीनारों से वस्त्र, चन्दन अगरु इत्र आदि अंगराग तथा पान आदि शौक की वस्तुएं खरीदता था,तीसरे सौ दीनारों को स्नान करने के पश्चात् विष्णु और शिव की पूजा में लगाता था, बाकी दो सौ दीनारों को ब्राह्मणों और निर्धनों को देता था। इस प्रकार विभाग करके प्रतिदिन पांच सौ दीनारों को वह खर्च कर देता था। उसके बाद अग्निहोत्र हवनादि सम्पन्न

एतत् सर्वं चारमुखात् श्रुत्वा राजा शूद्रकः भृशं तुतोष, निवारयामास च तान् चरान् पुनस्तस्य मार्गणे; मेने च विशेषपूजार्हं तं पुरुषातिशयम्।

अथ गच्छत्सु दिनेषु एकदा धारावर्षिणि दिवानिशि जलदपटले गगनमावृण्वति, जनरहिते च समन्तात् राजमार्गे, एकाकी स वीरवरस्तस्मिन् सिंहद्वारे एवाऽतिष्ठत्। स राजा दिनपतावस्तं गते तादृशे भीषणे तमसि विजृम्भिते सधारावर्षे, तस्य वीरवरस्य भावं जिज्ञासुः निशि प्रासादाग्रमारुह्य जगाद'कोऽत्र सिंहद्वारि स्थितः?' इति। तदाकर्ण्य-'अहमेव स्थितः'

एतत् सर्वं वृत्तान्तम् इति शेषः। चार मुखात् = गुप्तचरमुखात्, श्रुत्वा = आकर्ण्य राजा शूद्रकः भृशं तुतोष = सन्तुष्टोऽभूत्। तान् चरान् पुनः तस्य मार्गणे = अन्वेषणे निवारयामास, मेने च तं विशेषपूजार्हिम् = अधिकसम्माननीयं, पुरुषातिशयं = पुरुषश्रेष्ठम्।

अथ = अनन्तरं, गच्छत्सु दिनेषु = यापितेषु कतिपय दिवसेषु, एकदा धारावर्षिणि = जलस्राविणि, दिवानिशि = दिवि च निशि च जलधरपटले = मेघसमूहे, गगनम् = आकाशम्, आवृण्वति = आच्छादिते सति, जनरहिते = निर्जने च, समन्तात् = सर्वतः, राजमार्गे = प्रधानमार्गे, एकाकी = केवलः स वीरवरः तस्मिन् सिंहद्वारे एव अतिष्ठत् = तस्थौ। स च राजा शूद्रकः, दिनपतौ = सूर्ये अस्तंगते तादृशे भीषणे तमसि = भयंकरे गहनान्धकारे, विजृम्भृते सधारावर्षे = वृद्धिं प्राप्ते जलधारापाते, तस्य वीरवरस्य भावं = हृदयगतचिन्तनं जिज्ञासुः = ज्ञातुमिच्छुकः, निशि रात्रौ, प्रासादाग्रम् = राजभवनस्य, अग्रम् = उपरि, आरुह्य जगाद = अपृच्छत् कोऽत्र सिंह द्वारिस्थितः इति। तदाकर्ण्य =

करके भोजन करके रात में राजभवन के उसी सिंह द्वार पर कृपाण और ढाल लेकर प्रतिदिन पहरा देता था।

कुछ दिन बीत जाने पर एक बार जब रात दिन घनघोर वर्षा हुई, आकाश बादलों से ढक गया, चारों ओर राजमार्ग निर्जन हो गया, तब भी वीरवर अकेला उस राजभवन के सिंहद्वार पर पहरा देता रहा। राजा सूर्य के अस्त हो जाने के पश्चात् उसी भयंकर अन्धकार में घनघोर वर्षा के समय उस वीरवर के मन के भावों को

इति वीरवरः प्रत्यवादीत्। 'अहो !' महासत्त्वोऽयं वीरवरः मद्भक्तः, तदेष मया अवश्यमेव महत् पदं प्रापणीयः' इति सञ्चिन्त्य राजा प्रासादादवतीर्य अन्तःपुरं प्रविश्य शयनमगात्।

अन्येद्युश्च तथैव मेघेषु धाराऽऽसारान् वर्षत्सु निशायां, भुवने कालतमसि विजृम्भिते, राजा पुनश्च तद्भावं जिज्ञासुः प्रासादमधिरुह्य सिंहद्वारमभि–'कोऽत्र स्थितः?' इति व्याजहार।

तच्छुत्वा अहमेव स्थितः इति वीरवरः प्रत्यवादीत् = तं प्रति अब्रवीत्। अहो! महासत्त्वो = महाबलोऽयं वीरवरः मद्भक्तः = मम सेवकः, तदेष मया अवश्यमेव महत्पदं प्रापणीयः इतोऽपि उच्चपदं दापनीयः = दातुं योग्य इत्यर्थः। इति संचिन्त्य मनसि निधाय, राजा प्रसादात् अवतीर्य अन्तःपुरं प्रविश्य शयनमगात् = सुप्तवान्।

अन्येद्युः = अपरेह्नि च तथैव = पूर्ववत् धारासारान् वर्षत्सु निशायां = वेगेन वृष्टि युक्तायां रात्रौ, भुवने = लोके, कालतमसि = काले प्रलयसमये इव तमसि अन्धकारे, विजृम्भृते = व्याप्ते सति, राजा = भूपतिः पुनश्च तद्भावं = तस्य वीरवरस्य मनोगतं विचारं, जिज्ञासुः = ज्ञातुमिच्छन्, प्रासादम् = राजभवनम् अधिरुहय सिंहद्वार-मभि = मुख्यद्वारं अभिलक्ष्य "कोऽत्र स्थितः" इति व्याजहार = अपृच्छत्।

जानने की इच्छा से राजमहल की छत पर चढ़कर बोला–सिंह द्वार पर कौन है?

यह सुनकर वीरवर बोला–'मैं ही हूँ।' अहो! यह वीरवर बहुत बलवान् है, मेरा भक्त है, इसको इससे भी ऊंचा पद देना चाहिए। यह विचार कर, महल की छत से उतर कर राजा अन्तः पुर में जा कर सो गया।

दूसरे दिन उसी प्रकार जोरदार वर्षा होते रहने पर भी रात में, जब सम्पूर्ण लोक में प्रलयकाल के समान अन्धकार छा गया, तब राजा ने फिर से उसके स्वभाव (कर्तव्यनिष्ठा) को जानने की इच्छा से महल में चढ़कर सिंहद्वार की ओर अभिमुख होकर पूछा—यहां कौन है?

वीरवरेण च–'अहं स्थितो देव!' इति प्रोक्ते स राजा भृशं विसिष्मिये, शुश्राव च तावददतिदूरे सहसा रुदतीं कामपि स्त्रियं वामस्वरेण; व्यचिन्तयच्च–'केयं विषादविकलेव सप्रलापकरुणं विरौति? राष्ट्रे च मम पराभवः नास्ति, न दरिद्रः, नापि कश्चित् दुःखितः, तदेषा का?' इति। आदिदेश च करुणार्द्रचेताः तं वीरवरमधःस्थितं–'भो वीरवर! शृणु, एषा दूरे काऽपि रोदिति, किमर्थमसौ रोदिति, का चेयम्? त्वया गत्वा एतत् निरूप्यताम्' इति।

वीरवरेण = तन्नामकेन प्रहरिणा अहं स्थितो देव इति प्रोक्ते = कथिते स राजा भृशम् = अतिशयेन, विसिष्मिये = विस्मितोऽभूत्। शुश्राव च = अश्रृणोच्च तावद् अतिदूरे रुदतीं = क्रन्दन्तीं कामपि स्त्रियं = एकां नारीं, वामस्वरेण = विकृतस्वरेण। ततः किञ्चिद् दूरे एका स्त्री उच्चैः तारस्वरेण क्रन्दन्ती आसीत्। तस्या क्रन्दनम् अश्रृणोदिति भावः। स राजा व्यचिन्तयच्च = विचारं कृतवान् केयं विषादविकलेव = विषादो मनसः दुःखं, तेन विकला व्याकुला इव सप्रलापकरुणं = निरर्थक युक्तं दीनस्वरः ताभ्यां सहितं विरौति = क्रन्दति। राष्ट्रे च मम पराभवः = दुर्बलानां पीडनं नास्ति, न दरिद्रः = मम राज्ये न कोऽपि द्ररिद्रः = धनहीन इति भावः। नापि कश्चिद् दुःखितः = कष्टेन आक्रान्तः। तदेषा का? इति। आदिदेश = आदिशत् च करुणार्द्र चेता = दयार्द्रमनोवृत्तिः राजा तं वीरवरम् अधः स्थितम्–भो वीरवर! श्रृणु = श्रूयताम्, एषा दूरे काऽपि रोदिति, किमर्थमसो रोदिति = अस्या क्रन्दने किं प्रयोजनम् इति भावः। का चेयम्? त्वया गत्वा एतत् निरूप्यताम् = निर्णीयताम् इत्यर्थः।

जब वीरवर ने कहा–देव महाराज मैं हूँ, तब राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। पास से ही उसे सहसा रोती हुई स्त्री की आवाज सुनाई दी जो बहुत विकृत स्वर में जोर-जोर से विलाप कर रही थी। राजा ने सोचा–मेरे राष्ट्र में कोई गरीबों को सताता नहीं है, कोई दरिद्र नहीं है और न कोई दुःखी है, तब यह कौन है? करुणा से द्रवित होकर उसने नीचे बैठे हुए वीरवर को आदेश दिया-हे वीरवर! सुनो, दूर बैठी यह कौन रो रही है, यह किस लिए रो रही है, यह कौन है, तुम वहाँ जा कर सब समझो।

तदाकर्ण्य स वीरवरः 'तथा' इत्युक्त्वा निबद्धासिधेनुः करतलधृतकरवालश्च गन्तुं प्रावर्त्तत, नागणयत् तत् स्थूलधाराशिलावर्षि ज्वलद्विद्युद्विलोचनं नवमेघान्धतमसम्। तच्च तादृश्यां निशायां प्रस्थितमेकाकिनं दृष्टवा करुणाकौतुकाऽऽविष्टो राजा प्रासादादवतीर्य गृहीतासिरेकाकी अनुपलक्षितः तमनुजगाम।

स च वीरवरः रुदितमनुसरन् नगर्या बहिः सरोवरमेकं प्राप, ददर्श

तदाकर्ण्य = तत् श्रुत्वा, स वीरवर तथा = आम् इत्युक्त्वा निबद्धासिधेनु = बद्धछुरिकः सन्, करतल धृतकरवालश्च = करतले धृतः खड्गः येन सः गन्तुं प्रावर्तत = यातुं प्रवृत्तोऽभूत्। नागणयत् = मनसि न चिन्तयति स्म स्थूल धाराशिला-वर्षि = स्थूला महत्यो जलधारा एव शिला तद्वर्षि = करकवर्षि, ज्वलद्विद्युद्विलोचन = ज्वलन्ती स्फुटन्ती विद्युदेव विलोचनं = नेत्रं यस्य तं, नवमेघान्धतमस–नवो नवीनो मेघः कृष्णवर्णमेघः तेन अन्धतमसं = तमः। ततश्च = तदनन्तरं, तादृश्यां निशायाम् = अन्धीभूतायां रात्रौ, प्रस्थितं = गन्तुं प्रवृत्तम् एकाकिनं दृष्ट्वा करुणाकौतुकाविष्टो = करुणया दयया कौतुकेन औत्सुक्येन च आविष्टः = युक्तः राजा प्रसादात् = राज भवनाद् अवतीर्य, गृहीतासिः = गृहीतखड्गः, एकाकी = केवलः, अनुपलक्षितः = अदृष्टः, तम् अनुजगाम = अन्वगच्छत्।

स च वीरवरः रुदितं = क्रन्दनम् अनुसरन् नगर्या बहिः सरोवरम् एकं प्राप = प्राप्तवान्। ददर्श च तत्र = स तत्र अपश्यत् हा शूर = वीर, हा कृपालो = दयालो,

---

यह सुनकर ठीक है–यह कहकर कमर में छुरी बांध कर, हाथ में तलवार लेकर वह चलने लगा, मोटी जलधारा और ओले बरसाने वाले, चमकती हुई बिजली रूपी आँखों वाले काले मेघों से उत्पन्न अंधेरे की उसने परवाह नहीं की। उस प्रकार की रात में चल पड़े उस अकेले (वीरवर) को देखकर करुणा और उत्सुकता से युक्त हृदय वाला राजा भी अपने राजमहल से उतर कर तलवार लिये हुए अकेले छिप कर उसका पीछा करने लगा।

वह वीरवर क्रन्दन की आवाज का अनुसरण करता हुआ नगर के बाहर एक तालाब के पास पहुँचा और उसने हाय वीर ! हाय दयालु ! हाय दानी ! तुमसे

च तत्र–'हा शूर! हा कृपालो! हा वदान्य! त्वया शून्या कथमहं वत्स्यामि!' इत्येवं रुदतीं वारिमध्यवर्तिनीं कामपि स्त्रियम् । स च वीरवरः–'का त्वम्? कथं वा रोदिषि?' इति विस्मितः सचकितमपृच्छत्। सा अभ्यधात् 'भो वीरवर! मां पृथिवीं जानीहि, अस्याश्च मम इदानीं धार्मिकः शूद्रको नाम राजा भर्ता; इतश्च तृतीये दिने तस्य राज्ञो मृत्युर्भविष्यति, तादृशमन्यं पतिं कथमवाप्नुयामिति शोकेन विधुराऽहं शोचामि' इतिं।

एतदाकर्ण्य स वीरवरस्त्रस्त इव तामब्रवीत्–'देवि ! अस्ति कश्चिदस्य

हा वदान्य = बहुप्रद = महादानिन्, हा इति शोकाभिव्यञ्चकम् अव्ययम्, त्वया शून्या रहिता कथम् अहं वत्स्यामि स्थास्यामि–इति एवं प्रकारेण रुदतीं वारिमध्यवर्तिनीं = जलमध्येस्थितां, कामपि = एकां, स्त्रियं = नारीम् दृष्ट्वान् इत्यर्थः । स च वीरवरः का त्वम्? कथं वा रोदिषि? इति विस्मितः सचकितम् आश्चर्येण सह अपृच्छत् = पृष्टवान्।सा अभ्यधात् = कथितवती = भो वीरवर ! मां पृथ्वीं = वसुन्धरां, जानीहि = विद्धि । अस्याश्च मम = पृथिव्या, इदानीं धार्मिकः = धर्माचरणरतः शूद्रको नाम राजा भर्ता = स्वामी । इतश्च = अद्यारभ्य तृतीये दिने तस्य राज्ञो मृत्युंभविष्यति । तादृशमन्यं पतिं = स्वामिनं कथम् आप्नुयाम = प्राप्नुयाम इति शोकेन = दुःखेन, विधुरा = विकला अहं शोचामि = कष्टमनुभवामि इति ।

इत्याकर्ण्य स वीरवरः त्रस्तः = भयेन व्याकुलः इव ताम् अब्रवीत्–देवि अस्ति कश्चिद् अस्य प्रतीकारः = हे देवि पृथ्वि ! अस्य संकटस्य निवारणीयः कश्चित् प्रत्युपायः अस्ति किम् इतिभावः । येन उपायेन अस्य जगत्प्रभोः = जगतः स्वामिनः राज्ञः रक्षा स्यात्?

रहित होकर मैं कैसे रहूंगी–इस प्रकार रोती हुई जल के बीच में खड़ी कोई स्त्री को देखा। वीरवर ने–तुम कौन हो? और क्यों रोती हो–ऐसा आश्चर्य से पूछा। वह बोली-हे वीरवर मुझे पृथ्वी जानो। इस समय मेरे स्वामी परम धार्मिक शूद्रक नाम के राजा हैं, आज से तीसरे दिन उस राजा की मृत्यु हो जायेगी, वैसा दूसरा स्वामी मुझे कैसे मिलेगा, इस शोक से व्याकुल होकर मै छटपटा रही हूँ।

यह सुनकर वीरवर घबड़ा कर बोला–हे देवि क्या इस संकट को दूर करने

प्रतीकारः? येनास्य जगत्प्रभो रक्षा स्यात्?' इति।

तस्य वचनमाकर्ण्य सा वसुमती प्रत्यभाषत–'वत्स! एक एवास्त्युपायः, कर्त्तुञ्च शक्तो भवान्' इति। वीरवरोऽवदत् -'देवि! तद्वद द्रुतं यावत् शीघ्रं तत् साधयामि; अन्यथा कोऽर्थः प्राणैरस्माकम्?' तदाकर्ण्य धरित्री प्राब्रवीत् 'वत्स! त्वदन्यः कः प्रवरः स्वाभिभक्तः? तदस्य उपायं शृणु-अस्य राजकुलस्यान्तिके राज्ञाऽनेन प्रतिष्ठापिता देवी चण्डिकाऽस्ति; तस्यै चेत् सत्वरं पुत्रमुपहारीकरोषि, तदा एष राजा न म्रियेत, अन्यत् शतं समा जीवेत् । अद्यैव चेत् भवता एतत्

तस्य वचनम् आकर्ण्यं = श्रुत्वा, सा वसुमती = पृथ्वी, प्रत्यभाषत = पुनरब्रवीत् वत्स ! एक एव अस्ति उपायः, कर्तुं च शक्तो भवान् इति। वीरवरोऽवदत् = देवि, तद् = उपायं, वद = कथय, द्रुतं = शीघ्र येन तत् शीघ्रम् = अविलम्बम् अहं साधयामि = करोमि। अन्यथा कोऽर्थः प्राणैः अस्माकम् = प्राणै किं प्रयोजनम्? यदि नैव किञ्चित् करोमि कथं प्राणान् धारयानीति भावः। तदाकर्ण्य = तत् श्रुत्वा, धरित्री = पृथ्वी, प्राब्रवीत् = अवदत् वत्स ! त्वद् = त्वां विना अन्यः कः प्रवरः = श्रेष्ठ :, स्वामिभक्तः = राजभक्तः। तदस्य = निवारणस्य उपायं श्रुणु। अस्य राजकुलस्य = राजभवनस्य अन्तिके = समीपे, राज्ञाऽनेन = अनेनैव भूपतिना, प्रतिष्ठापिता = यथाविधि, स्थापिता देवी चण्डिका = कालिकेति यावत्। तस्यै = देव्यै चेत्, सत्वरं = शीघ्रं, पुत्रम् = आत्मजम्, उपहारीकरोषि = पशुत्वेन बलिं कल्पयसि, तदा एष राजा न म्रियेत = मृत्युं न गच्छेत्, अन्यत

का कोई उपाय है? जिससे इस जगत् के स्वामी की रक्षा हो सके?

उसकी बातें सुनकर–पृथ्वी ने फिर कहा–बेटा! एक उपाय है और आप उसे करने में समर्थ हैं। वीरवर ने कहा–देवी शीघ्र वह उपाय बतायें। जिससे बिना बिलम्ब किये मैं वह करूँ। अन्यथा हमारे प्राणों का क्या प्रयोजन है? हमारे जीवन से क्या लाभ? यह सुनकर धरती बोली–बेटा! तुम से दूसरा कौन श्रेष्ठ स्वामिभक्त है। अतः इसका उपाय सुनो–इस राज भवन के पास इसी राजा ने शास्त्र के अनुसार चण्डिका देवी की स्थापना की है। उसको यदि तुम अपने पुत्र

क्रियते तदैव शिवम्, नान्यथा' इति।

पृथिव्या तथाऽभिहितः स वीरो वीरवरस्तदा–'यामि देवि ! करोमि अधुनैव एतत्' इति प्रत्यवादीत्। वसुन्धरा च–'भद्रं तेऽस्तु' इत्यभिधाय तिरोदधे। गुप्तमनुसृतः स राजा तत् सर्वं शुश्राव।

ततश्च गूढे तस्मिन् राजनि तद्भावं जिज्ञासमाने गच्छति स वीरवरस्त्वरितं गृहमगात्, आगत्य च तत्र पत्नीं धर्मवतीं बिवोध्य तत्

= शतं समाः शतसंख्याकान् वत्सरान् जीवेत् = जीवनं धारयेत्। अद्यैव चेद् भवता एतत् क्रियते तदा एव शिवं = कल्याणं, नान्यथा=अन्यप्रकारेण न। इति।

पृथिव्या-धरया तथा अभिहितः = प्रोक्तः स वीरो वीरवरः तदा = तस्मिन् समये देवि ! करोमि अधुनैव एतत् = यद् भवत्या उक्तं तत् सद्यः सम्पादयामीति भावः। इति प्रत्यवादीत् = उक्तवान्। वसुन्धरा = वसुधा च 'भद्रं तेऽस्तु' = ते कल्याणमस्तु इत्याभिधाय = कथयित्वा, तिरोदधे = अन्तर्हिता बभूव। गुप्तमनुसृतः = प्रच्छन्नरूपेण अनुसरन् स राजा शूद्रकः तत् सर्वं शुश्राव। तयोः = सकलं वार्तालापं श्रुतवान्।

ततश्च = तदनन्तरं गूढे तस्मिन्, राजनि = तस्मिन् भूपतौ शूद्रके प्रच्छन्नरूपे तद्भावं = तस्य वीरवरस्य मनोगतं विचारं जिज्ञासाभावे ज्ञातुम् इच्छिते ततः गच्छति सति स वीरवरः त्वरितं = शीघ्रं, गृहं = स्वनिवासम्, अगात् = अगच्छत्। आगत्य च तत्र पत्नीं धर्मवतीं विवोध्य = जागरयित्वा, तत्सर्वं =

को बलि दोगे तो यह राजा नहीं मरेगा और सौ वर्ष तक और जीयेगा। आज ही यदि आप यह कार्य करेंगे तभी कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

पृथ्वी के ऐसा कहने पर वह वीर वीरवर उस समय बोला–देवि ! यह कार्य मैं अभी करता हूं। धरती भी तुम्हारा कल्याण हो–यह कह कर अन्तर्ध्यान हो गयी। छिपकर पीछा करने वाले राजा ने उन दोनों की सब बातें सुन ली।

उसके पश्चात् छिपे हुए उस राजा ने जब उस (वीरवर) का हृदय गत भाव जान लिया और जब वह (राजा) वहाँ से चला गया, तब वीरवर जल्दी से अपने

सर्वं वसुन्धराप्रोक्तमर्थं प्राब्रवीत्। साऽपि तदाकर्ण्य तं स्वामिनम् आह स्म–'प्रभो ! शिवं भाव्यं चेत्, तदा शिशुमेनं प्राबोध्य भवानेव ब्रवीतु।'

ततः स वीरवरस्तु सुतं बालं सुप्तं प्राबोध्य वृत्तान्तमाख्याय समवोचत्–'पुत्र ! त्वयि चण्डिकादेव्या उपहारीकृते राजाऽसौ जीवति, नो चेत् तृतीयेऽह्नि विपत्स्यते।'

तदाकर्ण्य बालोऽपि यथार्थं नाम दर्शयन् अकातरचित्तः सत्वरं पितरमवदत्–'तात ! यदि राजा मम प्राणैर्जीवेत् तदाऽहं कृतार्थः।

सकलं, वसुन्धराप्रोक्तं = पृथिव्या कथितं वृत्तात्तम् ताम् प्राब्रवीत् = अश्रावयत्। साऽपि तदाकर्ण्य = तत् श्रुत्वा तं स्वामिनं = पतिम्, आह = उक्तवती–प्रभो ! शिवं = कल्याणं भाव्यं चेद् तदा शिशुम् = बालम् एनं प्राबोध्य = विबोध्य भवानेव ब्रवीतु = कथयतु।

ततः स वीरवरः, सुतं बालं सुप्तं प्राबोध्य = जागरयित्वा, वृत्तान्तम् आख्याय = कथयित्वा, समवोचत् = अवदत्–पुत्र त्वयि चण्डिकादेव्या उपहारीकृते = बलिरूपेण प्रदत्ते सति राजाऽसौ = अयं नृपः जीवति, नोचेत् = अन्यथा, तृतीयेऽहनि = अद्यारभ्य तृतीय दिवसे, विपत्स्यते = मरिष्यति।

तदाकर्ण्य = तत् श्रुत्वा, बालोऽपि यथार्थं नाम = शक्तिं धरतीति शक्तिधर इति स्व नाम्नः सार्थकतां, दर्शयन् = सूचयन, अकातरचित्तः = अदीनहृदयः सन् सत्वरं = क्षिप्रं पितरम् अवदत्–तात = हे पितः ! यदि राजा मम प्राणैः जीवेत् = देहं धारयेत्, तदाऽहं कृतार्थः = कृतः सफलः, अर्थः = प्रयोजनं यस्य तथा

घर गया, अपनी पत्नी को जगा कर पृथ्वी के द्वारा कहे गये पूरे वृत्तान्त को उसने उसे सुनाया। उसने भी उस बात को सुन कर कहा–हे स्वामी यदि ऐसा करने से कल्याण हो तो उस बच्चे को जगा कर आप ही इसे बताइये।

तब उस वीरबर ने सोये हुए बालक पुत्र को जगाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और फिर कहा – बेटा ! चण्डिका देवी को जब बलि के रूप में तुम्हें चढ़ा दिया जायेगा तब यह राजा जी सकता है अथवा आज से तीसरे दिन मर जायेगा।

यह सुनकर बच्चा भी अपने नाम की यथार्थता को दिखलाता हुआ दृढ़ हृदय

भुक्तस्य च तदन्नस्य परा निष्कृतिः प्रदत्ता स्यात्। तत् किं विलम्ब्यते, शीघ्रं मां नीत्वा भगवत्या उपहारीकुरुष्व, मज्जीवनेन राज्ञोऽ-मङ्गलशान्तिर्भवतु।'

इति तेनोक्तो वीरवरः सहर्ष--'साधु! सत्यं त्वं मत्पुत्रः' इति तमभ्यनन्दयत्।

तस्य भार्या धर्मवती, कन्या वीरवती च तस्यां रात्रौ ताभ्यां वीरवरशक्तिधराभ्यां सह चण्डिकागृहे ययतुः।

राजाऽपि छन्नवेशः तान् पृष्ठतोऽलक्षितः समनुससार।

भूतोऽस्मीति भावः। तस्य राज्ञः भुक्तस्य अन्नस्य परात्तिष्कृतिः = श्रेष्ठे निकषः प्रदत्ता स्यात्। तत् किं बिलम्ब्यते प्रतीक्ष्यते? शीघ्रं मां नीत्वा भगवत्या उपहारीकुरुष्व = बलिप्रदानेन तां प्रसादय इति भावः। मज्जीवनेन = मदीय प्राणार्पणेन राज्ञो = नृपस्य, अमङ्गलस्य शान्तिर्भवतु। इति तेन = बालेन उक्तः, वीरवरः सहर्षं = प्रसन्नः सन् साधु, सत्यं त्वं मत्पुत्रः = ममसदृश एव इति भावः, इति तम् अभ्यनन्दत् = प्राशंसत्।

तस्य = वीरवरस्य भार्या धर्मवती कन्या वीरवती तस्यां रात्रौ ताभ्यां वीरवर-शक्ति धराभ्यां सह चण्डिकागृहे ययतुः = जग्मतुः। राजाऽपि छद्मवेशः= कपट वेशः तान् चतुरः पृष्ठतोऽलक्षितः = अदृश्यः, समनुससार = अनुगमनम् अकरोत्।

होकर बिना डरे पिता से तुरन्त बोला – पिता जी यदि राजा मेरे प्राणों की बलि देने से जीयेगा तो मैं कृतार्थ (सफल प्रयोजन वाला) हो जाऊँगा। उसके द्वारा दिये गये अन्न को जो मैंने खाया है उसका श्रेष्ठ मूल्य चुकाया जा सकेगा। अतः देर क्यों कर रहे है व जल्दी मुझे वहा ले जा कर बलि दे दीजिये। मेरे जीवनदान से राजा के अमंगल की शान्ति हो।

यह सुन बीरवर हर्षित हो कर – ठीक है, सच में तुम मेरे पुत्र हो – इस प्रकार उसकी प्रशंसा करने लगा।

उसकी पत्नी धर्मवती कन्या वीरवती उन दोनों वीरवर और शक्तिधर

तत्र देव्याः पुरः पित्रा स्कन्धादवतारितः स शक्तिधरः देवीं प्रणम्य धैर्यराशिः कृताञ्जलिर्न्यवेदयत्–'देवि ! मम शिरस उपहारेण राजाऽसौ अन्यत् शतं वत्सरान् जीवन् अकण्टकं राज्यं करोतु।'

इत्येवं प्रार्थयतस्तस्य सूनोः शक्तिधरस्य शिरश्छित्त्वा वीरवरः चण्डिकायै–'मत्पुत्रोपहारेण राजा जीवतु' इति वदन् प्रददौ।

तत्क्षणम् अन्तरिक्षात् वागुदचरत् –'कस्त्वदन्यः स्वामिभक्तः भो वीरवर! येन त्वया एकमात्रपुत्रेण तथाविधस्यपुत्रप्राणव्ययिना अस्य

तत्र देव्याः पुरः पित्रा = जनकेन वीरवरेण स्कन्धाद् अवतारितः स शक्तिधरः देवीं प्रणम्य = नत्वा, धैर्यराशिः = धीरताया समूहः कृताञ्जलिः = समित् पाणिः सन्, न्यवेदयत् = उक्तवान्, देवि ! = भगवति, मम शिरसः = मस्तकस्य, उपहारेण = बलिदानेन असौ राजा-शूद्रकः अन्यत् शतं वत्सरान् = वर्षाणि जीवन् अकण्टकं = बाधारहितं, राज्यं करोतु। इत्येवं प्रार्थयतः तस्य सूनोः = पुत्रस्य शक्तिधरस्य शिरश्छित्वा वीरवरः चण्डिकायै–मत्पुत्रोपहारेण = मम पुत्रस्य बलिप्रदानेन राजा जीवतु इति वदन् प्रददौ = समर्पयाञ्चकार।

तत्क्षणं = तत्कालम्, अन्तरिक्षाद् = आकाशाद्, वागुच्चरत् = वाणी उदतिष्ठत्–कस्त्वदन्यः स्वामिभक्तः भो वीरवर ! येन त्वया एकमात्रपुत्रेण = एक एव पुत्रो यस्य स तेन, तथाविध, पुत्रप्राणव्ययिना = तथाविधस्य पूर्वोक्तप्रशंसनीयस्य

के साथ चण्डिका के मन्दिर में गयी।

राजा भी गुप्त वेश में उन के द्वारा न देखा जाता हुआ पीछे-पीछे गया।

वहां देवी के सामने पिता ने पुत्र को कन्धे से उतारा। वह धैर्य की राशि शक्तिधर देवी को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोला – देवी मेरे शिर का उपहार लेकर यह राजा और सौ वर्ष जीये और बाधा रहित हो राज्य करे – ऐसी प्रार्थना करते हुए पुत्र शक्तिधर के मस्तक को काट कर वीरवर ने मेरे पुत्र के उपहार से यह राजा जीये–ऐसा करते हुए चण्डिका को समर्पित किया।

उसी समय अन्तरिक्ष से वाणी सुनाई दी–हे वीरवर तुम्हारे सिवाय और कौन स्वामिभक्त होगा, जिसने अपने एक ही उस प्रकार के प्रशंसनीय सत्पुत्र के प्राणों

भूपतेः जीवनं राज्यञ्च दत्तम्' इति।

तच्च सर्वं तस्मिन् नृपे पश्यति श्रृण्वति च तस्य वीरवरस्य कन्या वीरवती तस्य भ्रातुर्निहतस्य मूर्द्धानमाश्लिष्य शोकान्धा स्फुटितहृदया तत्क्षणात् व्यपद्यत।

ततो भार्या धर्मवती वीरवरमब्रवीत् – 'नाथ ! राज्ञस्तावत् श्रेयः कृतम्; इदानीमहं वदामि, दृष्टा त्वया, कन्यापि मे शोकात् मृता, तदिदानीं नष्टापत्याया मे जीवितेन किम्? प्रागेव मूढया मया राज्ञः श्रेयोऽर्थं स्वशिरः उपहर्त्तव्यमासीत् तदधुना अनुज्ञां देहि, अहं शीघ्रम् अनलं प्रविशामि।'

सत्पुत्रस्य प्राणान् व्ययति उत्सृजति यः स तेन अस्य भूपतेः = राज्ञः, जीवनं = प्राणान् राज्यं च दत्तम्।

तच्च सर्वं तस्मिन् नृपे पश्यति श्रृण्वति च तस्य वीरवरस्य कन्या = पुत्री वीरवती नाम्नी तस्य भ्रातुः = अनुजस्य, निहतस्य = मृतस्य, मूर्धानं = मस्तकम्, आश्लिष्य = आलिङ्ग्य, शोकान्धा = शोकेन विकला सती स्फुटहृदया = विदीर्णहृदया तत्क्षणात् = न्यपद्यत = सद्यः अम्रियत।

ततो = तदनन्तरं भार्या (वीरवरस्य) पत्नी धर्मवती वीरवरं अब्रवीत्-नाथ = स्वामिन्। राज्ञस्तावत् श्रेयः = कल्याणं कृतम्। इदानीम् अहं वदामि–दृष्टा त्वया कन्यापि मे मृता = निष्प्राणा जाता। तद् इदानीं = अधुना, नष्टापत्यायाः =

को दे देने वाले तुमने इस राजा के जीवन और राज्य को दिया। राजा यह सब सुन और देख ही रहा था कि उसकी क्न्या वीरवती अपने मृत भाई के सिर को आलिङ्गन करके शोक से अन्धी होती हुई मर गई।

तब उसकी भार्या धर्मवती वीरवर से बोली – स्वामी राजा का कल्याण तो कर दिया। आपने देखा ही मेरी कन्या भी शोक से मर गई। अब नष्ट सन्तानों वाली मेरे जीने का क्या लाभ। पहले ही मुझ अविवेकिनी को राजा का शुभ करने के लिए अपने सिर की बलि देनी चाहिये थी। अब आज्ञा दीजिये, मैं शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश कर जाऊँ।

इति आग्रहेण वदन्तीं तां वीरवरोऽवदत् - 'एवं कुरुष्व, अपत्यदुःखैकमये जीवितव्ये का प्रीतिः? यच्च त्वयोक्तं —'किं न दत्तो मयाऽऽत्मा' इति, तदत्र व्यथां मा कुरु, यदि अन्यसाध्यमेतद्राज्ञः श्रेयो भवेत् तदाऽहमपि किम् आत्मानं न दद्याम्? तत् प्रतीक्षस्व तावत् अमीभिर्दारुभिस्ते चितां रचयामि।'

इत्युक्त्वा चितायां तेन सज्जितायां ज्वलन्त्यां धर्मवती पत्युः पादयोः पतित्वा तां चण्डीं देवीं प्रणम्य व्यजिज्ञपत् —'देवि ! जन्मान्तरेऽपि

नष्टे अपत्ये पुत्रकन्ये यस्या सा तस्याः जीवितेन किम्? जीवनस्य न किञ्चित् प्रयोजनमस्तीति भावः। प्राक् = पूर्वम् एव मूढया अविवेकिन्या मया राज्ञः श्रेयोऽर्थं = कल्याणाय स्वशिरः उपहर्तव्यम् = समर्पयितव्यम् = आसीत्। तदधुना = इदानीम्, अनुज्ञां = आज्ञां देहि, अहं शीघ्रम् = सत्वरम्, अनलं = अग्निं, प्रविशामि–इति आग्रहेण = निर्बन्धेन वदन्ती तां वीरवरोऽवदत्–एवं कुरुष्व = तथा विधेहि, अपत्यदुःखैकमये = सन्तानं विना दुःखप्रधाने जीवितव्ये = आयुषि का प्रीतिः = नैव किञ्चिदिति भावः। यच्च त्वयोक्तं = भवत्या कथितं किं न दत्तो मया आत्मा, तदत्र व्यथां मा कुरु = दुःखिता मा भूत्, यदि अन्यसाध्यम् = अन्येन उपायेन साध्यम् एतन्नृपस्य श्रेयः = शुभं भवेत्। तदाऽहमपि किम् आत्मानं न दद्याम्। तत् प्रतीक्षस्व = मुहूर्तं तिष्ठ तावत्, अभीमिः = पुरोदृश्यमानैः, दारुभिः = काष्ठैः ते चितां रचयामि।

इत्युक्त्वा चितायां तेन =वीरवरेण, सञ्चितायां ज्वलन्त्यां सति सा धर्मवती पत्युः पादयो पतित्वा तां चण्डीं देवीं प्रणम्य व्यजिज्ञपत् = अवादीत्–देवि! जन्मान्तरेऽपि = अन्यस्मिन् जन्मनि अपि अयं वीरवर एव मे पतिर्भूयात्, अस्य

इस प्रकार आग्रहपूर्वक कहती हुई उससे वीरवर ने कहा – ऐसा ही करो, सन्तान के लिए दुःखी इस जीवन की क्या चाह?

जो तुमने कहा – क्या मैंने अपनी आत्मा को नहीं दिया, अतः दुःख मत करो, यदि इस राजा का कल्याण किसी दूसरे उपाय से होता तो क्या मैं अपने को न दे देता, इसलिए प्रतीक्षा करो, इन लकड़ियों से मैं तुम्हारी चिता सजाता हूं।

अयमेव मे पतिर्भूयात् , अस्य च प्रभोः शूद्रकस्य मदीयेनात्मजेन शिवम्' इति समुदीर्य तस्मिन्नेव ज्वालामालिनि अनले देहं न्यक्षिपत् ।

ततश्च स वीरवश्चिन्तयामास –'निष्पन्नं मे राजकार्यं, दिव्यवाण्या विज्ञातं, भुक्तस्य च राजान्नस्य साम्प्रतमनृणोऽस्मि, तदिदानीमेकस्य मम केयं जीवनतृषा? भरणीयं सर्वं कुटुम्बकं व्ययीकृत्य एकमात्मानं जीवयन् मादृशो न शोभते; तत् किम् आत्मोपहारेण अम्बिकां न

च प्रभो = राज्ञः शूद्रकस्य मदीयेन आत्मजेन = पुत्रेण, शिवं = कल्याणम् भूयाद् इति समुदीर्य = उच्चार्य तस्मिन् एव ज्वालामालादीप्यमाने अनले = वह्नौ देहं स्वशरीरं, न्यक्षिपत् = उत्ससर्ज।

ततश्च = तदनन्तरं वीरवरः चित्तयामास = व्यचारयत्, निष्पन्नं = सम्पादितं, मे = मया, राजकार्यं दिव्यवाण्या = आकाशवाण्या, विज्ञातं = सूचितम्, भुक्तस्य च राजा न्नस्य = भूपतिना प्रदत्तस्य अन्नस्य साम्प्रतम् = इदानीम्, अनृणः = ऋणमुक्तः अस्मि। तदिदानीं = तस्माद् अधुना, मम केयं जीवनतृषा = जीवनेच्छा रूपा तृष्णा? भरणीयं पोषणीयं सर्वं कुटुम्बकं = परिवारं व्ययीकृत्य विनाश्य, एकम् = एकाकिनं, जीवयन् = प्राणान् धारयन्, मादृशो = ममसदृशो न शोभते। तत्किम् आत्मनः उपहारेण = स्वजीवन समर्पणेन, अम्बिकां = देवीं न प्रीणयामि–इत्यालोच्य = इति विचार्य स वीरवरः तां देवीं प्रथमः स्तुत्या = स्तोत्रेण उपतस्थे = आराधयामास। जय

इस प्रकार कह कर उस वीरवर के द्वारा सजाई गई चिता के जल जाने पर, वह धर्मवती पति के पैरों गिर कर चण्डी देवी को प्रणाम करके बोली – हे देवी दूसरे जन्म में भी यही मेरा पति हो, इस राजा शूद्रक का मेरे पुत्र से कल्याण हो- यह कहकर उसने उसी ज्वाला से दहकती आग में अपने को झोंक दिया।

इस के बाद वीरवर ने सोचा मेरे द्वारा राजा का कार्य सम्पन्न हो गया, जो देववाणी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ था, राजा के द्वारा दिये गये भुक्त अन्न से मैं अनृण हो गया। अब मुझे जीने की कौन सी अभिलाषा है। जिनका भरण पोषण करना था हम पूरे परिवार को गवां कर अकेले जीना मुझे शोभा नहीं देता, तब मैं अपने को बलि चढ़ा कर देवी को प्रसन्न क्यों न करूँ, यह सोच कर उस वीरवर ने देवी

प्रीणयामि?' इत्यालोच्य स वीरवरस्तां देवी प्रथमं स्तुत्या उपतस्थे- 'जय महिषासुरमर्द्दिनि! तारिणि! दानवदारिणि! त्रिशूलधारिणि! विबुधोत्सवकारिणि ! भुवनत्रयधारिणि ! जय मातृवरे! जगदर्च्चितचरणे! शरण्ये! निःश्रेयसकारिणि भक्तजनानां, कालि! कपालिनि ! कङ्कालिनि! शिवे! नमोऽस्तु ते, प्रसीदेदानीं शूद्रकस्य नृपतेरनेन मदीयेन मस्तकोपहारेण।' इति स्तुत्वा स वीरवरः सद्यः तरवारेण स्वं शिरश्छिच्छेद।

विजयिनीभव इतिभावः। हे महिषासुरमर्दिनि = महिषनामकम् असुरं मर्दयति = पीडयति इति तत्सम्बोधने, तारिणि = तारयति भक्तान् भवसागराद् दुःखाद् वा तत्सम्बोधने, दानवदारिणि = दानवान् असुरान् दारयति छिनत्ति इति तत्सम्बोधने, त्रिशूल धारिणि = त्रिशूलं तन्नामकम् अस्त्रं धारयतीति तत्सम्बोधने, विबुधोत्सवकारिणी = बिबुधानां देवानां ज्ञानिनां वा उत्सवम् = आनन्दं कारयति इति तत्सम्बोधने, भुवनत्रय धारिणि = भूलोक, भुवर्लोक-स्वर्गलोकाख्यं वा भुवनत्रयं = लोक त्रयं धारयति, तत्सम्बोधनम्, मातृवरे = अष्ट मातृषु वराश्रेष्ठा, तत्सम्बुद्धौ, जगदर्चितचरणे = जगतां = जगद्वासिभिः अर्चितौ पूजितौ चरणौ = पादौ यस्या सा, तत्सम्बोधने, शरण्ये = शरणे रक्षणे साध्वी या सा तत्सम्बोधनं, निःश्रेयसकारिणि = निःश्रेयसं कल्याणं मोक्षं वा करोति = ददाति, तत्सम्बोधने, भक्त जनानाम् इति शेषः, कालि, कपालिनि = कपालं शिरोऽस्थि हस्ते अस्ति यस्या सा तत्सम्बोधने, कंकालिनि = अस्थिमालायुते, शिवे = कल्याणि नमोऽस्तु ते, प्रसीद इदानीं शूद्रकस्य नृपतेः = राज्ञ कृते अनेन मदीयेन मस्तकोपहारेण = मम मस्तकप्रदानेन इति स्तुत्वा = स्तुतिं विधाय स वीरवरः सद्यः = द्रुतमेव तरवारेण = खड्गेन स्वं शिरश्छिच्छेद = स्वकीय मस्तकम् अकर्तयत्।

की स्तुति इस प्रकार की – हे महिषासुरमर्दिनि–महिष नाम के असुर का संहार करने वाली, तारिणी–संसार सागर से तारने वाली, दानवों को मार गिराने वाली, त्रिशूल धारण करने वाली, विद्वानों के आनन्द को बढाने वाली, तीनों लोकों को धारण करने वाली, सभी अष्ट माताओं में सर्वश्रेष्ठ , जगत् के द्वारा जिनके चरणों की पूजा की जाती है, शरणदात्री, भक्तजनों को निःश्रेयस अर्थात् कल्याण या मोक्ष प्रदान करने वाली, हे काली, कपाल धारिणी, अस्थिमाला धारिणी शिवे ! नमस्कार

तदालोक्य स छन्नस्थितः शूद्रको नृपः व्याकुलः सदुःखः साश्चर्यश्च व्यचिन्तयत् –'अहो ! न मया ईदृशमन्यत्र दृष्टं वा श्रुतम् ; साधुनाऽनेन सपरिवारेण मदर्थे दुष्करं कृतम्। विचित्रेऽस्मिन् संसारे कोऽन्यः अनेन समो धीरः? प्रभोरर्थे यः पुत्रादीन् स्वञ्च जीवितं प्रादात्; एतस्य उपकारस्य सदृशमुपकारं यदि अहं न कुर्यां तदा मे प्रभुत्वेन किम्? जीवितेन वा पशोरिव किम् ? सत्त्वभ्रंशात् सर्वत्रैव मे अयशो भविष्यति।'

तद् आलोक्य = तत्सर्वं दृष्ट्वा, स छन्नस्थितः = छन्ने गुंप्तस्थाने स्थितः, नृपः = राजाशूद्रकः, व्याकुलः = विशेषेणं आकुलः, सदुःखः = दुःखेन सहितः, साश्चर्यः = आश्चर्यण सह व्यचिन्तयत् = विचारयामास–अहो न मया ईदृशम् अन्यत्र दृष्टं वा श्रुतं, साधुना = सज्जनेन अनेन वीरवरेण सपरिवारेण = परिवारसहितेन, मदर्थं = मम कृते, दुष्करं = अन्यैः, असाध्यं = कर्तुम् अशक्यं कार्यं कृतम्। विचित्रेऽस्मिन् संसारे = लोके, कोऽन्यः अनेन वीरवरेण समो धीरः= साहसी इत्यर्थः। प्रभोः = स्वामिनः, अर्थे = कृते यः पुत्रादीन् = पुत्रकलत्रादिकं स्वं च जीवितं = प्राणान् = प्रादात् = ददौ। एतस्य उपकारस्य सदृशम् उपकारं यदि अहं न कुर्यां तदा मे प्रभुत्वेन = स्वामित्वेन किम्? जीवितेन = प्राणधारितेन वा मम पशोरिव किं प्रयोजनम्? सत्त्वभ्रंशात् = सत्त्वगुणास्य, भ्रंशाद = नाशाद् प्रत्युपकारस्य अकरणाद् मे अयशो = परीवादो भविष्यति।

है। अब शूद्रक राजा के लिए मेरे मस्तक के उपहार से प्रसन्न होइये । ऐसी स्तुति करके वीरवर ने झट से अपना शिर काट दिया।

यह सब देखकर छिपा हुआ राजा शूद्रक व्याकुल दुःखी एवं आश्चर्य चकित होकर सोचने लगा - अहो! मैंने ऐसा न कभी देखा न सुना। इस सज्जन वीरवर ने परिवार के साथ इतना कठिन काम किया। इस विचित्र संसार में इसके समान साहसी और दूसरा कौन है? जो स्वामी के लिए पुत्र आदि और अपने जीवन की बलि चढ़ा देगा। इसके उपकार के समान उपकार यदि मैं नहीं करता हूँ तो मेरे राजा होने का क्या प्रयोजन है? जीवित रहने पर भी पशु जैसे जीवन से क्या लाभ? सत्त्व गुण के नाश होने पर सब जगह मेरी बदनामी होगी।

इति सञ्चिन्त्य स राजा कोशात् करवालम् आकृष्य समुपेत्य तां देवीं व्यजिज्ञपत् –

'देवि ! सततमनुप्रपन्नस्य मम अधुना अनेन शरीरोपहारेण सुप्रीता सती अनुग्रहं कुरु। अयं नानागुणयुतो वीरवरः सपरिवारो मदर्थं त्यक्तकलेवरः साम्प्रतं जीवतु।'

इति उदीर्य असिना यावत् स्वं शिरश्छेत्तुं प्रावर्त्तत, तावत् गगनात् भारती उदभूत् –

'वत्स ! मा साहसं कृथाः, अनेन ते सत्त्वेन परितुष्टाऽस्मि, प्रत्युज्ञीवतु अयं सापत्यदारो वीरवरः।'

इति संचिन्त्य = विचार्य स राजा कोशात् करवालं = खड्गमाकृष्य समुपेत्य = समीपं गत्वा तां देवीं = चण्डिकां व्यजिज्ञपत् = निवेदयामास।

देवि ! = हे भगवति, सततम् अनुप्रपन्नाय = शरणागतस्य मम अधुना अनेन शरीरोपहारेण सुप्रीता = सुप्रसन्ना सती अनुग्रहं = कृपां कुरु। अयं नानागुणवतो वीरवरः सपरिवारो = परिवारेण सहितः, त्यक्तकलेवरः = उत्सृष्टदेहः, साम्प्रतं जीवतु = पुनः प्राणवान् स्यादिति भावः। इति उदीर्य = इत्युक्त्वा, असिना = खड्गेन यावत् स्वं शिरश्छेत्तुं प्रावर्तत = प्रवृत्तोऽभूत् = तावत् गगनाद् अम्बराद्, भारती = वाणी, उदभूत् = अश्रूयत–वत्स मा साहसं कृथाः = साहसं न कर्तव्यम् इति भावः। अनेन ते सत्त्वेन = सदाचरणेन सन्तुष्टास्मि। प्रत्युज्जीवतु

ऐसा सोच कर राजा ने अपने म्यान में से तलवार निकालकर समीप जाकर देवी से कहां–

हे देवी ! सदैव शरण में आये हुए मेरे इस शरीर को उपहार के रूप में स्वीकार कर प्रसन्न होओ और कृपा करो। यह अनेक गुणों वाला वीरवर परिवार के साथ मेरे लिए जिसने अपने देह को त्याहा है – पुनः जीवित हो जाय। यह कह कर तलवार से जैसे ही राजा अपना मस्तक चढ़ाने को प्रवृत्त हुआ, वैसे ही आकाशवाणी हुई – वत्स ! साहस न करो, तुम्हारे साहस से मैं सन्तुष्ट हूँ, यह वीरवर सपरिवार पुनः जीवित हो – ऐसा कहकर जैसे ही आकाशवाणी शान्त हुई

इत्युक्त्वा तस्याम् अन्तरिक्षवाचि विरतायामेव स वीरवरः पुत्रेण दुहित्रा पत्न्या च सह अक्षतशरीरो जीवन्नुत्तस्थौ।

तदवलोक्य राजा पुनः छन्नविग्रहः हर्षाश्रुपूरया दृष्ट्या तान् पश्यन् न तृप्तिमाययौ।

सोऽपि वीरवरः सुप्तोत्थित इव तं पुत्रं पत्नीं दुहितरञ्च पश्यन् विभ्रान्तमानसः समभवत्, अपृच्छच्च पृथङ्नामग्रहं तान्– 'कथं विनष्टा यूयं जीवन्तः पुनरुत्थिताः? किमयं मे विभ्रमः? आहोस्वित् स्वप्नः?

= पुनर्जीवतु, अयं सापत्यदारः = पुत्र्या पुत्रेण पत्न्या च सह वीरवरः। इत्युक्त्वा-तस्याम् अन्तरिक्षवाचि = इति आकाशवाण्यां, विरतायां = विश्रान्तायाम् एव स वीरवरः पुत्रेण दुहित्रा पत्न्या च सह अक्षतशरीरो यथापूर्वं स्वस्थदेहः सन् जीवन् उत्तस्थौ = उदतिष्ठत्।

तद् अवलोक्य = दृष्ट्वा, राजा पुनः छन्नविग्रहः = गुप्तशरीरः सन् हर्षाश्रुपूरया = आनन्दाश्रुपूरितया दृष्ट्या तान्– सर्वान् पश्यन् न तृप्तिम् आययौ = जगाम।

सोऽपि वीरवरः सुप्तोत्थित इव तं पुत्रं पत्नीं दुहितरं च पश्यन् विभ्रान्त- मानसः = विभ्रान्तं संशयितं मानसं मनो यस्य सः तादृशः समभवत् = अभूत्। अपृच्छत् च पृथग् नामग्रहं = पृथक्-पृथक् प्रत्येकं पुत्रादीनां नाम्ना ग्रहं = ग्रहणं यस्मिन् तान् कथं विनष्टा यूयं जीवन्तः पुनरुत्थिताः किमयं मे विभ्रमः = भ्रान्तिः, आहोस्वित्

वैसे ही वीरवर पुत्र पुत्री और पत्नी के साथ पहले की तरह स्वस्थ शरीर वाला होकर जीवित उठ खड़ा हुआ।

यह सब देख कर राजा फिर से छिपकर हर्ष से उत्पन्न आंसुओं से पूर्ण आंखों से उन सबों को देखता हुआ तृप्त नहीं हुआ, वह वीरवर भी सोकर उठे हुए के समान उस पुत्र, पुत्री और पत्नी को देख कर भ्रम पूर्ण मन वाला हो गया और एक-एक का अलग - अलग नाम लेकर उनसे पूछने लगा—तुम सभी मर चुके थे फिर से कैसे जी उठे हो? क्या यह मेरा भ्रम है, या स्वप्न है या माया है या देवी की कृपा है। ऐसा कहते हुए उसे पत्नी और पुत्र पुत्री ने बताया—'देवी

माया वा? उत देव्या अनुग्रहः?' एवं वदन् स दाराऽपत्यैः–'देव्यनुग्रहेणैव वयं जीवामः' इति निजगदे।

ततः स वीरवरः 'तथा' इति मत्वा तां देवीं प्रणम्य पुत्रदारानादाय कृतार्थो गृहं ययौ।

तत्र च तं पुत्रं ताञ्च भार्यां दुहितरञ्च प्रवेश्य तस्यामेव रात्रौ राज्ञः सिंहद्वारमागमत् ।

राजा च शूद्रक एतत् सर्वं दृष्ट्वा अलक्षित एव गत्वा स्वं प्रासादमारुरोह, पप्रच्छ च–'कोऽत्र सिंहद्वारे स्थितः?' इति।

वीरवरः प्रत्यवादीत् –'प्रभो ! अहं वीरवरस्तिष्ठामि; देवादेशाच्च

स्वप्नः, माया वा ? उत देव्याः = चण्डिकाया, अनुग्रहः = कृपा, एवं वदन् सः दारापत्यैः = पत्न्या पुत्राभ्यां च देव्यनुग्रहेण = देव्याः कृपया एव वयं सर्वे जीवामः इति निजगदे = उक्तवान्। पत्नी पुत्रः पुत्री च तं अबोधयन् अस्मद् पुनर्जीवनं देव्याः कृपया एव वर्तते। ततः- तत्पश्चात्, स वीरवरः तथा = एवमेव सर्वम् उपपन्नम् इति मत्त्वा = ज्ञात्वा, तां देवीं प्रणम्य पुत्रदारान् = परिवारम् आदाय कृतार्थो = पूर्णप्रयोजनः सन् गृहं ययौ = भवनं गतवान्। तत्र = गृहे तं पुत्रं, तां भार्यां = पत्नी, दुहितरं = पुत्रीं च प्रवेश्य, तस्यामेव रात्रौ निशायां = राज्ञः सिंहद्वारि समागमत् = समनुप्राप्तः। राजा शूद्रकः एतत् सर्वं दृष्ट् वा अलक्षितः = गुप्तः एव गत्वा स्वं प्रासादम् आरुरोह, पप्रच्छ च = कोऽत्र सिहंद्वारे स्थितः इति।

वीरवरः प्रत्यवादीत्=प्रत्युत्तरं ददौ, 'प्रभो! अहं वीरवरः तिष्ठामि। देवादेशात्

की कृपा से हम फिर से जी उठे हैं।' तब वह वीरवर अच्छा ऐसा ही होगा यह समझ कर देवी को प्रणाम कर पुत्र पुत्री और पत्नी को लेकर घर आया। इन तीनों–पुत्र पुत्री पत्नी को घर में प्रवेश करा कर अपने उसी राजा के सिहंद्वार पर पहरा देने लगा।

राजा शुद्रक ने यह सब देखा और अलक्षित होकर अपने राजभवन में चढ़ कर और पूछा - सिंहद्वार पर कौन है?

वीरवर ने उत्तर दिया - प्रभो! मैं वीरवर यहां बैठा हूँ।

तां रुदतीं स्त्रियं प्रति गतश्चाहम् ; सा काऽपि राक्षसी, मम वचसा दृष्टैव कापि प्रनष्टा' इति।

एतत्तस्य वचः श्रुत्वा राजा नितरां विस्मितो दृष्टोदन्तो व्यचिन्तयत– 'अहो ! समुद्रगम्भीरधीरचित्ता मनस्विनः, ये अनन्यसामान्यं कर्म कृत्वाऽपि नोद्गिरन्ति।'

इत्यालोच्य प्रासादादवरुह्य स राजा अन्तःपुरं गत्वा रात्रिशेषम् अत्यवाहयत्।

= देवस्य राज्ञः आदेशाद् = नियोगात्, तां रुदतीं = क्रन्दन्ती स्त्रियं प्रति गतश्चाहम्, सा काऽपि राक्षसी, मम वचसा दृष्ट्वा एव क्वापि प्रणष्टा = अन्तर्हिता।

एतत् तस्य वचः = वाग् श्रुत्वा = आकर्ण्य राजा नितरां विस्मितः = चकितः दृष्टोदन्तः = दृष्टः अवलोकितः उदन्तः वृत्तान्तः येन सः, तथाभूतः = व्यचिन्तयत् = विचारयामास–अहो ! समुद्रगम्भीरचित्ताः = सुमुद्र इव गम्भीरं = दुरवगाहं धीरं चित्तं हृदयं येषां ते तथाविधाः, मनस्विनः = प्रशस्तमनसः कुलीना पुरुषा इति यावत्, ये अनन्यसामान्यं = असाधारणं कर्म कृत्वा अपि नोद्गिरन्ति = न उच्चारयन्ति। इत्यालोच्य = इति विचिन्त्य प्रासादात् = राजमहलाद् अवरुह्य स राजा अन्तः पुरं गत्वा रात्रिशेषं अत्यवाहयत् = निशामुपगतः सन् शेषां निशां अयापयत्।

आपके आदेश से उस रोती हुई स्त्री के पास मैं गया, वह कोई राक्षसी थी मुझे देखते ही मेरी बोली सुनते ही कहीं अन्तर्ध्यान हो गई।

यह सब सुन कर राजा बहुत चकित हुए, जिन्होंने पूरे वृत्तान्त को अपनी आँखों से देखा था। वे अपने मन में विचार करने लगा– अहो ! कुलीन पुरुष समुद्र के समान गम्भीर हृदय वाले होते हैं जो असाधारण कार्य करके भी अपने मुख से उसका बखान नहीं करते – यह सोच कर महल से उतरकर अपने अन्तःपुर में जाकर उसने बची हुई रात का शयन करके बितायी।

अथ प्रातः आस्थानसमये दर्शनार्थमुपगते वीरवरे स्थिते हृष्टो राजा सर्वेभ्यो मन्त्रिभ्यः अन्येभ्यश्च तस्य तं रात्रिवृत्तान्तमवर्णयत्।

सर्वे सविस्मयाः मोहिताश्च वीरवरगुणश्रवणेन तत्क्षणमभवन्, प्राशंसुश्च- 'साधु-साधु इति। ततो राजा वीरवरश्च अन्योन्यं तुल्यविभवौ सुखमासाताम्।'

इति कथामाख्याय बेतालस्तं त्रिविक्रमसेनं नृपमपृच्छत्- 'राजन्! एतेषु

अथ = अनन्तरं, प्रातः आस्थानसमये = सभाकाले, दर्शनार्थमुपगते=दर्शनार्थ समीपं गते वीरवरे, स्थिते, हृष्टः = प्रसन्नो राजा सर्वेभ्यः मन्त्रिभ्यः अन्येभ्यश्च तस्य वीरवरस्य तं रात्रिवृत्तान्तम् = निशायाः, घटनाम् अवर्णयत् = अकथयत्।

सर्वे = सभासदः वीरवरस्य गुणानां श्रवणेन तत्क्षणं सविस्मयाः = चकिताः, मोहिताः = विमुग्धान्तःकरणाः प्राशंसुः = प्रशंसितवन्तः साधु-साधु इति। ततः = तत्पश्चाद् राजा वीरवरश्च अन्योऽन्यं = परस्परं तुल्यविभवौ तुल्यः समानः विभवः ऐश्वर्यं ययो तौ सन्तौ सुखम् = सुखपूर्वकं, आस्ताम् = अभूताम्।

इति कथाम् आख्याय = कथयित्वा श्रावयित्वा वा वेतालः तं त्रिविक्रमसेनं नृपं = तन्नामक राजानम् अपृच्छत्–राजन्! एतेषु त्रिषु वीरवर तत्परिवार राजसु कोऽधिकः = कः श्रेष्ठः ते मतः = तवाऽभिमतः। त्वया गणितः इति भावः। जानन् न वक्ष्यसि = न कथयिष्यति तदा पूर्व एव स शापः सेत्स्यति = मस्तकस्फुटन

प्रातः काल सभाकाल में जब वीरवर दर्शन के लिए राजा के समीप जा कर खड़ा हुआ, तब राजा ने सभी मन्त्रियों और अन्यों के समक्ष उसके रात के सम्पूर्ण वृत्तान्त का वर्णन किया। सभी वीरवर के गुणों को सुन कर विस्मय से मोहित हो गये। साधु - साधु (बहुत अच्छा–बहुत अच्छा) कहकर प्रशंसा करने लगे। तब राजा और वीरवर दोनों समान वैभव वाले होकर सुख पूर्वक रहे।

इस कथा को कह कर वेताल ने उस त्रिविक्रम सेन से पूछा – राजन्! इन सभी में श्रेष्ठ तुम्हारे अनुसार कौन है? यदि जानते हुए नहीं बोलेगे तो पहले वाले शाप (सिरके टुकडे होना) सिद्ध हो जायेगा।

यह सुन कर राजा ने उस बेताल से कहा – हे देवयोनि! इन सभी में राजा शूद्रक सर्वश्रेष्ठ है।

कोऽधिकस्ते मतः? यदि जानन्न वक्ष्यसि तदा पूर्व एव स शापः सेत्स्यति।'

एतदाकर्ण्य स राजा तं वेतालमभाषत–'देवयोने ! एतेषु सर्वेषु राजा शूद्रक एव समधिकः प्रवरः' इति।

वेतालोऽब्रवीत्–'नृपते ! कथं वीरवरो न? यस्य तुल्यः पृथिव्यां सेवको न विद्यते; तत्पत्नी वा कथं समधिकेति न प्रशस्यते? या सूनोः पशूपहारतां प्रत्यक्षं दृष्ट्वाऽपि न धैर्यात् प्रच्युताऽऽसीत्; स वा पुत्रः शक्तिधरः कथं नाभ्यधिकः? यस्य बालस्यापि सतस्तादृशः सत्त्वोत्कर्षः। तत् कथमेकं शूद्रकं नृपं त्वं प्रवरं भाषसे?'

इत्युक्तवन्तं वेतालं स नृपः पुनरवादीत् –'कुलपुत्रो वीरवरस्ता-

---

रूपः स शापः सिद्धो भविष्यति।

एतदाकर्ण्य = एतत् श्रुत्वा स राजा त्रिविक्रमसेनः तं वेतालम् अभाषत = अवदत्- देवयोने = हे देवांशसम्भूत! एतेषु सर्वेषु राजा शूद्रक एव समधिकः प्रवरः = सर्वश्रेष्ठः। वेतालोऽब्रवीत् = वेतालः अकथयत्- नृपते! कथं वीरवरो न? यस्य तुल्यः सदृशः = पृथिव्यां = वसुधायां, सेवको = भृत्यो न विद्यते, तत्पत्नी कथं समधिका श्रेष्ठ न प्रशस्यते = कथ्यते, या सूनोः = सुतस्य, पशूपहरतां = पशुवद् बलिरूपतां प्रत्यक्षं दृष्ट्वाऽपि न धैर्यात् प्रच्युता आसीत् = धीरा एव अभूदित्यर्थः। स वा पुत्रः शक्तिधरः कथं नाभ्यधिकः श्रेष्ठ :, यस्य बालस्यापि सतः तादृशः सत्त्वोत्कर्षः = धैर्यातिशयः, तत्कथम् एकं केवलं शूद्रकं नृपं त्वं प्रवरं श्रेष्ठं भाषसे = अभिधत्से।

इत्युक्तवन्तं = इति वदन्तं वेतालं स नृपः पुनर अवादीत् = अवोचत्

बेताल ने कहा – राजन! वीरवर क्यों नहीं? जिसके समान पृथ्वी में कोई सेवक नहीं है, उसकी पत्नी सबसे श्रेष्ठ क्यों नहीं कही जाती, जिसने पुत्र के आंख के सामने बलि चढ़ते देख धैर्य नही खोया, वह पुत्र शक्तिधर क्या सबसे बढ़ कर नहीं जो बालक होते हुए इतना धैर्यशाली है। तब केवल राजा शूद्रक को ही तुम श्रेष्ठ कैसे कहते हो?

ऐसा कहते हुए बेताल से उस राजा ने कहा – कुलीन वीरवर वैसा

दृक्न, तस्य प्राणैः सुतैः दारैश्च स्वामिसंरक्षणं कार्यम् ; तस्य च पत्नी कुलजा साध्वी पतिप्राणा भर्तृवर्त्मानुसरन्ती धर्ममेव पालितवती; शक्तिधरोऽपि तयोर्जातस्तादृश एव, यादृशास्तन्तवः तादृश एव पटो जायते। येषां भृत्यानां प्राणैः नृपेण आत्मा रक्ष्यते, तेषामर्थं प्राणांस्त्यजन् शूद्रक एव सर्वेषु विशिष्यते।'

इति वचः समाकर्ण्य च वेतालः नृपते अंसादलक्षितः सहसा निजाऽऽवासं ययौ। राजाऽपि तन्मायया अनुच्चलितोऽपि तस्यामेव निशि पुनस्तमानेतुं मतिमकरोत्।

कुलपुत्रो कुलीनो, वीरवरः तादृक् न, तस्य प्राणैः सुतैः दारैः च स्वामिसंरक्षणं = स्वामिनः राज्ञः संरक्षणं = प्राणरक्षा, कार्यं = करणीयं, तस्य च पत्नी कुलजा = सत्कुलोत्पन्ना, साध्वी पतिप्राणा = पतिव्रता, भर्तृवर्त्मानुसरन्ती धर्ममेवपालितवती, शक्तिधरस्तु तयोः = दम्पत्योः जातः पुत्र तादृशः = स्वमातुः पितुश्च समानगुणः इत्यर्थः, यादृशास्तन्तवः = यादृशि सूत्राणि तादृश एवपटो जायते,येषां भृत्यानां प्राणैः नृपेण आत्मा रक्ष्यते, तेषामर्थं = तेषां कृते प्राणांस्त्यजन् शूद्रकः एव सर्वेषु विशिष्यतै = विशिष्टतया परिगणितुं योग्यः। इति वचः समाकर्ण्य = श्रुत्वा, स वेतालः नृपतेः असाद् = स्कन्धाद् अलक्षितः सहसा प्रमेव निजावासं= निजवासस्थानं, गतः = गतवान्। राजाऽपि तन्मायया अनुच्चलितोऽपि = अप्रभावितोऽपि पुनः तम् वेतालम् आनेतु तस्यामेव निशायां मतिं = बुद्धिम् अकरोत्।

(सर्वश्रेष्ठ) नहीं, उसे तो अपने प्राणों, पुत्रों, पत्नी से स्वामी की रक्षा करना कर्तव्य है। उसकी पत्नी साध्वी पति पर प्राणों को न्योछावर करने वाली, पति के मार्ग का अनुसरण करने वाली, धर्म का ही पालन कर रही थी; शक्तिधर उन दोनों से उत्पन्न होने से वैसा ही था, जैसे धागे होते हैं वैसा ही पट होता है। जिन सेवकों ने अपने प्राण देकर राजा की आत्मा की रक्षा की उनके लिए प्राण त्यागने वाला शूद्रक सबसे महान् है। इस बात को सुनकर वह वेताल राजा के कन्धे से हटकर सहसा अपने निवास स्थान पर चला गया।

राजा भी उसकी माया से प्रभावित हुए विना उसी रात पुनः उसको लाने के लिए प्रवृत्त हो गया।

यशःकेतु-दीर्घदर्श्युपाख्यानम्

अथ राजा तथैव तस्य शिंशपातरोरन्तिकं गत्वा तं वेतालं स्कन्धमारोप्य पुनर्गन्तुं प्रावर्तत।

वेतालश्च भूयस्तमवादीत् –'राजन् ! इत्थम् अनुद्विग्नः त्वं भृशं मे प्रियोऽसि, तदेतां हृद्यामाख्यायिकां ते श्रमविनोदाय कथयामि, शृणु-

आसीदङ्गदेशे यशःकेतुरिति युवा स्वाङ्गगुप्त्यर्थम् अदग्धः तनुमाश्रितोऽपर इव स्मरो नरपतिः। बाहुवीर्येण पराजितवैरिकुलस्य तस्य शक्रस्येव बृहस्पतिः दीर्घदर्शी नाम मन्त्री अभूत्। कदाचित् स

अथ = अनन्तरं, राजा तथैव तस्य शिंशपातरोः अन्तिकं = समीपं गत्वा तं वेतालं स्कन्धम् = अंसम् आरोप्य पुनर्गन्तुम् = प्रावर्तत = प्रवृत्तोऽभूत्।

वेतालश्च भूयः = पुनरपि, तं = राजानम्, अब्रवीत् = अवदत्। राजन्! इत्थम् अनुद्विग्नः = अव्याकुलः त्वं भृशं मे प्रियोऽसि, तदेतां हृद्यां = मनोहराम्, आख्यापिकां = कथां ते श्रमविनोदाय = श्रमदूरीकरणाय कथयामि, शृणु–

आसीद् अङ्गदेशे यशःकेतुरिति युवा स्वाङ्गुप्त्यर्थं = स्वस्य अङ्गं शरीरं तस्य गुप्त्यर्थं रक्षार्थं अदग्धतनुः = न दग्धः, तनुं = शिवेन न दग्धः इति भावः, अदग्ध देहधारी अपरः स्मरः = कामदेव इव नरपतिः = राजा। बाहुवीर्येण भुजयोः पराक्रमेण पराजितं वेरीणां कुलं समूहो येन सः, तस्य शक्रस्येव बृहस्पतिः

इसके बाद राजा उसी प्रकार उसी सैमल के पेड़ के समीप जा कर उस वेताल को कन्धे पर लटका कर पुनः चलने लगा।

बेताल ने फिर उससे कहा – हे राजन्! इस प्रकार विना व्याकुल हुए तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, इस लिए इस मनोहर कथा को तुम्हारी थकान मिटाने के लिए कहता हूँ सुनो –

अंग देश में यशः केतु नाम का युवक अपने शरीर की रक्षा के लिए शिव के द्वारा न जलाये हुए शरीर में विद्यमान दूसरे काम देव के समान एक राजा था।

राजा वयोरूपमदात् निहतकण्टकं राज्यं तस्मिन् मन्त्रिणि विन्यस्य शनैः सुखासक्तः समजायत। केवलं निरन्तरं प्रमदाऽऽस्पदे अन्तःपुरे तस्थौ, शुश्राव च तासां सानुरागगीतं, न हितैषिणां वचनम्; रज्यति स्म स सततं जालवातायनेषु, न पुनर्बहुच्छिद्रेषु राजकार्येषु कदाचिदपि। दीर्घदर्शी तु तं राज्यचिन्ताभारं समुद्वहन् दिवानिशम् अतन्द्रितस्तस्थौ।

दीर्घदर्शी नाम मन्त्री अभूत्। यथा इन्द्रस्य मन्त्री वृहस्पतिः तथा स मन्त्री आसीद् इति भावः। कदाचित् = एकदा स राजा वयो रूप मदात् = वयः, तारुण्यं, रूपं = सौन्दर्यं तयो र्मदाद् गर्वात् निहतकण्टकं = निरस्तशत्रुगणं, राज्यं तस्मिन् मन्त्रिणि विन्यस्य = आरोप्य शनैः सुखासक्तः समजायत = सुखेषु भोगेषु आसक्तोऽभूत्। केवलं निरन्तरं = सततं, प्रमदास्पदे = प्रमदानां सुन्दरीणाम् आस्पदं स्थानं तस्मिन् अन्तः पुरे = स्त्रीजननिवासस्थाने तस्थौ = न्यवसत्, सुश्राव च तासां सानुरागगीतिं न हितैषिणां शुभेच्छूणां वचनम्, रज्यति स्म स = प्रीतिम्, अनुभवति स्म स सततं जालवातायनेषु = जालयुक्तेषु गवाक्षेषु, न पुनः बहुछिद्रेषु = बहूनि छिद्राणि दोषाः संकट कार्याणि येषु, तेषु राजकार्येषु कदाचिद् अपि। दीर्घदर्शी तु तं राज्यस्य चिन्ताभारं समुद्वहन् दिवानिशम् = रात्रिन्दिवम्, अतन्द्रितः = जागरूकः, तस्थौ = आसीत्।

(अर्थात् कामदेव ने अपनी रक्षा के लिए यशः केतु के शरीर में प्रवेश किया था) उसने अपनी भुजाओं के बल से शत्रुओं के समूह को पराजित किया था। जैसे इन्द्र का मन्त्री वृहस्पति है, वैसे ही उसका भी दीर्घदर्शी नाम का मन्त्री था। एकबार वह राजा युवावस्था और सौन्दर्य के मद से निष्कण्टक राज्य को मन्त्री के ऊपर सौंप कर धीरे-धीरे भोगों में आसक्त होने लगा, केवल सुन्दरियों के अन्तः पुर में रहता, उनके अनुराग भरे गीत सुनता न हितैषी जनों के वचन, हीं सुनता, परदा पड़ी खिड़की में ही प्रीति का अनुभव करता, अनेक संकटों रूपी छिद्रों से युक्त राजकाज में नहीं। दीर्घदर्शी राज्य की चिन्ता के भार को वहन करने में रात दिन आलस रहित होकर तत्पर था।

अथ पौरेषु–'नृपं व्यसने प्रक्षिप्य महामन्त्री दीर्घदशी साम्प्रतं राज्ञः श्रियं स्वयं भुङ्क्ते' इति जनवादे समुत्थिते, स मन्त्री स्वगेहिनीं मेधाविनीं प्राब्रवीत्–'प्रिये ! राजनि सुखासक्ते, तद्भारं वहतोऽपि–'मे राज्यं भक्षितमनेन' इति महदयशो मे समुत्पन्नं जनेषु; लोकवादो हि महतामपि दोषमावहति, रामोऽपि जनापवादेन जानकीं त्याजितो न किम्? तन्मया किं कर्त्तव्यमधुना?' इति मन्त्रिणाऽभिहिते भार्या मेधाविनी धीरा

अथ = अनन्तरं, पौरेषु = नाग रिकेषु, नृपं = राजानं, व्यसने = भोगासक्तौ निक्षिप्य महामन्त्री दीर्घदर्शी साम्प्रतम् = अधुना राज्ञः, श्रियं = राज्य सम्पत्तिं स्वयं भुङ्क्ते = स्वयमेव अङ्गीकरोति इति जनवादे = लोकापवादे, समुत्थिते = प्रचलिते स मन्त्री स्वगेहिनीं = पत्नीं, मेधाविनीं प्राब्रवीत् = अवोचत्–प्रिये! राजनि सुखासक्ते = विषयेषु आसक्ते सति तद्भारं वहतः तद् राज्यकार्यं कुर्वन् अपि–मे राज्यं भक्षितम् अनेन इति महद् अयशः = अपकीर्तिः, मे = मम, समुत्पन्नं = प्रसृतं जनेषु, लोकवादः = लोकनिन्दा तु महतां = महापुरुषाणाम् अपि दोषम् आवहति। रामोऽपि जनापवादेन = लोकनिंदया, जानकीं = सीतां, त्याजितः = त्यक्तवान् न किम्? तन्मया किं कर्तव्यमधुना? इति मन्त्रिणा अभिहिते = कथिते भार्या मेधाविनी धीरा = धैर्यशालिनी, अन्वर्थनाम्नी = सार्थकनाम धारिणी (अन्वर्थं = मेधाविनी मेधा अस्ति अस्या इति सार्थकं नाम

इसके पश्चात् लोगों के राजा को व्यसन में ढकेल कर महामन्त्री दीर्घदर्शी स्वयं राज्य सम्पत्ति को ले रहा है–ऐसी लोक निन्दा के चल पड़ने पर मन्त्री ने अपनी पत्नी मेधाविनी से पूछा – प्रिये! राजा के भोगासक्त होने पर उसके राज काज के भार को वहन करते हुए भी मेरे विषय में यह निन्दा फैल रही है कि राजा का राज्य इसने खा लिया। लोक निन्दा से बड़ी हानि होती है। राम से भी लोकापवाद ने जानकी का त्याग करवा दिया। अतः मुझे अब क्या करना चाहिये? मन्त्री के ऐसा कहने पर उनकी सार्थक नाम वाली पत्नी मेधाविनी ने कहा–हे नाथ! तीर्थयात्रा के बहाने से आप युक्तिपूर्वक राजा से पूछिये– कुछ दिनों के लिए मुझ बूढ़े का विदेश जाना उचित है, अतः मुझे आज्ञा दीजिये।

अन्वर्थनाम्नी तं पतिमभाषत– 'नाथ! तीर्थयात्राऽपदेशेन युक्त्या महीपतिमापृच्छस्व- 'कियन्तं कालं विदेशं गन्तुं मे वृद्धस्येदानीं युक्तं, तदनुमन्यताम्' इति। एवं हि निःस्पृहस्य ते स जनवादो निवर्त्तिष्यते; त्वयि चास्थिते राजा स्वयं राजाधुरामुद्वक्ष्यति; ततश्च शनैरस्य व्यसनित्वञ्च शान्तिमेष्यति; आगतस्य च पुनस्ते सा एव मन्त्रिता अनिन्द्या भवति।'

इति भार्यया अनुशिष्टो महामन्त्री 'तथा' इति कथाप्रसङ्गेन तं नृपं यशःकेतुं व्यज्ञापयत् –'राजन् ! अनुजानीहि मां कांश्चिदपि दिवसानहं तीर्थयात्रार्थमितो ब्रजामि। धर्मो हि मे परमो मतः।' तदाकर्ण्य स

धारिणी इत्यर्थः) तं पीतम् = भर्तारम्, अभाषत = अब्रवीत् –नाथ। तीर्थयात्रापदेशेन तीर्थयात्रा व्याजेन, युक्त्या = युक्तिपूर्वकं, महीपतिं = नृपम्, आपृच्छस्व = पृच्छतु भवान् कियन्तं कालं विदेशं गन्तुं मे वृद्धस्य इदानीं युक्तम् = उवित्तम्, तदनुमन्यताम् = तद् अनुजानीहि। एवं हि = तीर्थयात्रायां गते सति, निःस्पृहस्य = निर्लोभस्य ते स ज नवादो = लोक निन्दा निवर्तिष्यते, त्वयि च अस्थिते = अविधमाने राजा स्वयं राजधुरां = राज्यभारं, उद्वक्ष्यति = पालयिष्यति। ततः= तस्मात् शनैरस्य शीघ्रमस्य व्यसनित्वं = सुखासक्तिः शान्तिम्, एष्यति = शान्ता भविष्यति। आगतस्य = प्रतिनिवृत्तस्य पुनस्ते सा एव मन्त्रिता अनिन्द्या भविष्यति।

इति भार्यया अनुशिष्टः = उपदिष्टः महामन्त्री तथा इति स्वीकृत्य कथापसङ्गेन तं नृपं यशः केतुं व्यज्ञापयत् = निवेदयामास–राजन्! अनुजानीहि मां कांश्चिदपि दिव सान् अहं तीर्थयार्थाम् इतो व्रजामि। धर्मो हि मे = मम, परमोमतः = सर्वश्रेष्ठ : मन्यते, तदाकर्म्य स राजा अब्रीवत्–मन्त्रिन् मा मैवम् एवं मा कुरु

इस प्रकार निर्लोभ आपकी लोक निन्दा समाप्त हो जायेगी और आपके न रहने पर राजा स्वयं राज्यभार सम्हालेंगे, तब धीरे-धीरे इनका व्यसनीपन शान्त हो जायेगा पुनः लौट जाने पर आपकी मन्त्रिता निन्दा से मुक्त होगी।

उस प्रकार पत्नी से उपदिष्ट होकर महामन्त्री ने ठीक है–ऐसा ही करूँगा- ऐसा मान कर कथा वार्तालाप के प्रसंग में उस राजा यशःकेतु से कहा–राजन्! मुझे कुछ दिनों के लिए तीर्थ यात्रा की आज्ञा दीजिये। धर्म मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है। यह सुनकर राजा ने घबड़ा कर कहा –

राजाऽब्रवीत-'मन्त्रिन्! मा मैवं, तीर्थैर्विना अपरो दानादिः किं न धर्मः? स्वगृहेष्वपि तेन स्वर्गसाधनं किं न स्यात्?'

अथ मन्त्री तमवोचत् – 'देव ! दानादौ अर्थशुद्ध्यादिकं मृगयते, तीर्थानि तु नित्यशुद्धानि, यावच्च यौवनं तावदेव धीमता गम्यानि, नो चेत् अविश्वास्ये अस्मिन् शरीरे कुतस्तैः सह सङ्गमः?' इति तस्मिन् मन्त्रिणि वदति, राज्ञि च तत् निषेधति, प्रविश्य प्रतीहारी तं राजानं

इत्यर्थः। तीर्थं विना अपरो दानादिः किं न धर्मः? स्वगृहेष्वपि = गृहे स्थिते सत्यपि किं तेन स्वर्गसाधनं = स्वर्गप्रातिरूपो धर्मो, न स्यात्?

अथ मन्त्री तं = राजानम्, अवोचत् = उक्तवान्–देव ! दानादौ अर्थशुद्धयादिकं मृग्यते = अन्विष्यते। तीर्थानि तु नित्यशुद्धानि, यावच्च यौवनं तावदेव धीमता = बुद्धिमता, गम्यानि = गन्तव्यानि, नो चेत् अविश्वास्ये = विश्वासं कर्तुम् अयोग्ये, अस्मिन् शरीरे = देहे कुतः तैः सह संगमः। शरीरस्य नश्वरतया यावत् पावनं यौवनमस्ति तावदेव तीर्थयात्रा सम्पादनीया इति भावः। इति तस्मिन् मन्त्रिणि वदति सति राज्ञि च तद् निषेधति प्रविश्य प्रतिहारी तं राजानं व्यजिज्ञपत् = द्वारपालिका तं राजानं यशःकेतुं न्यवेदयत् - देव! भगवानशुंमान् = सूर्यः व्योमसरोमध्यम् = व्योम आकाशमेव सरः सरोवरं तस्य मध्यं मध्यस्थानम् अवगाहते = मध्याह्नकालः सन्निहित इति भावः। तदुत्तिष्ठ = तस्मात् उत्तिष्ठतु भवान्, स्नान वेला तेऽतिवर्तते = अतिकामति। एतद् आकर्ण्य = श्रुत्वा राजा सहसा स्नातुम् उदतिष्ठत् = उत्थितोऽभूत्। यात्रोन्मुखः स मन्त्री = यात्रायै तीर्थगमनाय उद्यतः च तं प्रणम्य गृहमगात्। तत्र तां अनुगन्तुं = सहगन्तुं

मन्त्री जी! ऐसा न करें, तीर्थो के अतिरिक्त दान आदि क्या धर्म नहीं है? अपने घर पर ही रहकर उस दान आदि से स्वर्ग की प्राप्ति के उपाय किया जा सकता है।

उस मन्त्री ने राजा से कहा – देव ! दान आदि में अर्थ शुद्धि की अपेक्षा रहती है। तीर्थ तो नित्य शुद्ध हैं। जब तक यौवन है तब तक तीर्थ चले जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया है तो विश्वास के अयोग्य इस शरीर से इन तीर्थों का संयोग कैसे होगा। मन्त्री द्वारा यह कहते हुए, राजा के निषेध करने पर प्रतिहारी ने प्रवेश

व्यजिज्ञपत् –'देव ! भगवानंशुमान् व्योमसरोमध्यमवगाहते, तदुत्तिष्ठ, स्नानवेला तेऽतिवर्त्तते।' एतदाकर्ण्य राजा सहसा स्नातुमुदतिष्ठत्। यात्रोन्मुखः स मन्त्री च तं प्रणम्य गृहमगात् । तत्र तां भार्याम् अनुगन्तुमानसां निवार्य, स्वभृत्यैरपि अतर्कितः स्वयुक्त्या यात्रामकरोत्।

क्रमेण च एकाकी तान् देशान् तीर्थानि च भ्रमन् ओड्रविषयं प्रापत्। तत्र अब्धेरदूरे एकं पत्तनं प्राप्य, तत्र चैकं शैवं मन्दिरं प्रविश्य तत्प्राङ्गणे उपाविशत्। तत्र तम् अर्ककरसन्तप्तं दूराध्वभ्रमणधूसरं निधिदत्तो

मानसम् अभिलाषो यस्याः सा तं निवार्य स्वभृत्यैः = सेवकैः अपि अतर्कितः = अलक्षितः स्वयुक्त्या = निजविचारचातुर्येण = मदीयगमनेन राजा व्यसनाद् मुक्तो भवेद् मम च जनापवादो न स्याद् इति बुद्ध्या यात्राम् अकरोत्।

क्रमेण च एकाकी तान् तान् देशान् तीर्थानि च भ्रमन् ओड्र विषयं = ओड्रनामकं देशं उत्कलदेशम् इति यावत् प्रापत् = अगच्छत्। तत्र अब्धेरदूरे = समुद्र समीपे एकं पत्तनं = नगरं प्राप्य, तत्र = तस्मिन् देशे शैवं मन्दिरं प्रविश्य तत्प्राङ्गणे उपाविशत्। तत्र तं अर्ककरसन्तप्तं = सूर्यकिरणतापितं दूराध्व-भ्रमणधूसरं = दूरः दीर्घः यो अध्व मार्गः तत्र भ्रमणेन धूसरं मलिनं धूलीभिः आच्छादितं तं पथिकमिति शेषः, निधिदत्तो नाम देवार्चनाऽऽगतः–देवार्चनाय = देवतायाः पूजायै सम्प्राप्तः कश्चिद् वणिग् ददर्श। स वणिक् तं तथाविधं = परिश्रान्तं दृष्ट्वा सयज्ञसूत्रं = यज्ञसूत्रेण यज्ञोपवीतेन सहितं सुलक्षणं = शोभन लक्षणयुक्तं द्विजश्रेष्ठं = ब्राह्मणं, सम्भाव्य = अनुमीय, आतिथ्यार्थं = अतिथिसत्कार एव अर्थः प्रयोजनं तस्मै स्वगृहम् अनयत्।

कर के राजा को बताया–देव ! भगवान् सूर्य आकाश रूपी सरोवर के मध्य में अवगाहन कर रहे हैं अर्थात् दोपहर हो गई है, इसलिए उठिये, आपके स्नान का समय बीत रहा है। यात्रा के लिये उद्यत वह मन्त्री भी उसे (राजा का) प्रणाम करके चला गया। वहां साथ जाने की इच्छा रखने वाली अपनी पत्नी को रोक कर अपने सेवकों से होकर अपनी विचार की चतुरता से यात्रा पर चल पड़ा।

क्रम से अकेले ही उन उन देशों तीर्थों में घूमता हुआ वह उत्कल देश पहुंचा, वहां समुद्र के समीप ही एक नगर में पुहंच कर वहीं पर एक शिव मन्दिर में जाकर

नाम देवानार्चनाऽऽगतः कश्चित् वणिग् ददर्श। स तं तथाविधं दृष्ट्वा सयज्ञसूत्रं सुलक्षणं द्विजश्रेष्ठं सम्भाव्य आतिथ्यार्थं स्वं गृहमनयत् अपूजयच्च स्नानभोजनाद्यैः, अप्राक्षीच्च विश्रान्तं –'कस्त्वम् ? कुत आयातः? क्व यासि?' इति सोऽब्रवीत् –'अहं दीर्घदर्शी नाम विप्रः, अङ्गदेशादिह आयातस्तीर्थयात्रार्थी' इति।

ततः स महावणिक् निधिदत्तस्तमब्रवीत–'अहं वाणिज्यया सुवर्णद्वीपं गन्तुमुद्यतः, त्वं तावदस्मद्गृहे तिष्ठ, यावदहम् आगमिष्यामिः तीर्थयात्रा-परिश्रान्तोऽसि, अत्र कञ्चित् कालं विश्रम्य ततो यास्यसि' इति।

अपूजयच्च स्नान भोजनाद्यैः, अप्राक्षीच्च विश्रान्तं = श्रमेण क्लान्तं त पथिकम् अच्छत्--कस्त्वम् कुतः आयातः, क्व यासि इति। सोऽब्रवीत् अहं दीर्घदर्शी नाम विप्रः = ब्राह्मणः, अङ्गदेशादिह आयातः तीर्थयात्रार्थी इति।

ततः = तदनन्तरं स महावणिक् = व्यवसायी। निधिदत्तः तम् अब्रवीत्-अहं वाणिज्यया-वणिजां वृत्त्या व्यापाराय इत्यर्थः सुवर्णद्वीपं गन्तुम् उद्यतः = गमनाय प्रवृत्तः, त्वं तावद् अस्मद् गृहे तिष्ठ = निवासं कुरु, यावद् अहम् आगमिष्यामि, तीर्थयात्रार्थं कृतेन श्रमेण क्लान्तोऽसि, अत्र = अस्मद्गृहे, कञ्चित् कालं विश्रम्य ततो यास्यसि = तत्पश्चाद् गमिष्यसि। तदाकर्ण्य = तत् श्रुत्वा स दीर्घदर्शी प्रत्यवादीत् = उत्तरं ददौ मम इह = भवद्गृहे, स्थित्या = अवस्थानेन, अलं = नास्ति प्रयोजनम्, त्वया एव सह तत्र अहम् अपि गन्तुम् इच्छामि। ततः

आंगन में बैठ गया। धूप से तपे दूर से रास्ते की थकान से मलिन उसको देवता की पूजा के लिये आये हुए किसी निधिदत्त नाम के बनिये ने देखा। वह उसे यज्ञोपवीत धारण किये हुए शुभ लक्षणों से युक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण समझ कर अतिथि सत्कार के लिये अपने घर ले गया, स्नान भोजन आदि से उसकी पूजा की और विश्राम के बाद पूछा – तुम कौन हो ? क्यो आये हो ? कहां जा रहे हो ? उसने कहा– मैं दीर्घदर्शी नाम का ब्राह्मण हूँ। तीर्थ यात्रा के लिए अङ्ग देश से यहां आया हूँ।

तब वह बड़ा व्यापारी निधिदत्त उससे बोला– मैं व्यापार के लिए सुवर्ण द्वीप जा रहा हूँ। तुम तब तक हमारे घर ठहरों। जब तक मैं आता हूँ, तुम तीर्थयात्रा करके थके हो, यहां कुछ समय विश्राम करके तभी जाओगे।

तदाकर्ण्य स दीर्घदर्शी प्रत्यवादीत्–'ममेह स्थित्वा अलं, त्वयैव सह तत्राहमपि गन्तुमिच्छामि।' ततस्तेन साधुना–'एवमस्तु' इति कथिते स मन्त्री चिरादपास्तशयनो निशां तामनैषीत्।

अथान्येद्युस्तेन वणिजा सार्धं वारिधिं गत्वा तद्भाण्डपूर्णं प्रवहणं समारुरोह। तेन प्रवहणेन गच्छन् अद्भुतभीषणम् अम्भोधिं विलोकयन् क्रमेण तत् स्वर्णद्वीपमुपाययौ। तत्र च द्वीपे तेन क्रयविक्रयौ कुर्वता वणिजा निधिदत्तेन सह कञ्चित् कालमुवास। ततश्च तेन सह प्रत्यागच्छन् प्रवहणेन, तस्मात् सागरात् सहसा समुत्थितं प्रवालैः शारवाासुभगैः

तेन साधुना = सज्जनेन, एवमस्तु इति कथिते स मन्त्री चिराद् अपास्तशयनः = त्यक्तशय्याम् अनिद्रितः सन् इति भावः तां निशाम् = रात्रिम्, अनैषीत् =अयापयत्।

अथ अन्येद्युः = अपरदिवसे तेन वणिजा सार्धं वारिधिं गत्वा तद्भाण्डपूर्णं = तस्य वणिजः भाण्डेन मूलधनेन विक्रेयवस्तुसमूहेन वा पूर्णं = पूरितं, प्रवहणं = पोतम्, समारुरोह = आरुढवान्। तेन प्रवहणेन = पोतेन, गच्छन् अद्भुतभीषणं = अद्भुतो विस्मयजनकश्चासौ भीषणो भयानकः तम् अम्भोधिं विलोकयन् = पश्यन् क्रमेण तत् सुवर्णद्वीपम् उपाययौ = उपागमत्। तत्र च द्वीपे तेन क्रयविक्रये = क्रयः मूल्येन ग्रहणं विक्रयो मूल्यमादाय दानं तौ, कुर्वता वणिजा निधिदत्तेन सह कञ्चित् कालम् उवास। ततश्च = तदनन्तरं, तेन = वणिजा सह प्रत्यागच्छन् = प्रतिनिवर्तमानः, प्रवहणेन = पोतेन, तस्मात् सागरात् सहसा समुत्थितं प्रवालैः = विद्रुमैः, शाखा सुभगैः = शाखासुन्दरैः। जाम्बूनदोज्ज्वलैः = जाम्बूनदं सुवर्णम्

यह सुनकर दीर्घदर्शी ने उत्तर दिया – मेरा यहां रहने का कोई प्रयोजन नहीं है, तुम्हारे साथ वहां मैं भी जाना चाहता हूं। तब उस सज्जन के ठीक है – कहने पर मन्त्री ने जल्दी ही शय्या त्याग कर उस रात को बिताया।

दूसरे दिन व्यापारी के साथ समुद्र में जा कर उसके माल से परे हुए जहाज में चढ़ गया। उसी पोत से जाते हुए समुद्र को देखते हुए क्रमशः उस सुवर्ण द्वीप में आया। उस द्वीप में क्रय विक्रय लेन देन करते हुए निधिदत्त बनिये के साथ कुछ दिन रहा। उसके बाद उसी के साथ पोत से लौटते हुए उसी समुद्र से सहसा

जाम्बूनदोज्ज्वलैः काण्डैः मणिमयैः फलैः कान्तैश्च कुसुमैः सुशोभित कल्पवृक्षमद्राक्षीत्; तस्य च स्कन्धे सद्रत्नपर्य्यङ्कोपरि स्थिताम् अत्यद्भुताकारां कमनीयां कमपि कन्यकामैक्षत। 'अहो! किमेतत् !!' इति स मन्त्री यावत् ध्यायति स्म, तावत् सा कन्या वीणापाणिः गातुमुपचक्रमे –'येन यत् कर्मबीजमुप्तं, स निश्चितं तत्फलं भुङ्क्ते, पूर्वकृतं हि कर्म विधिनाऽपि अन्यथाकर्त्तुं न शक्यते।' इति सङ्गीतार्थ प्रकटय्य क्षणादेव सा दिव्यकन्या कल्पद्रुमपर्य्यङ्कसहिता तत्रैव ममज्ज। 'किमप्येतदपूर्वमद्य मयेह दृष्टं क्व अब्धिः? क्व च दृष्टनष्टोऽयं दिव्याङ्गनासहितस्तरुः? यदि च अब्धेरीदृश एव शश्वदकाराः, तदा

इव, उज्ज्वलैः = भास्वरैः काण्डैः मणिमयैः = मणिभिः निर्मितैः फलैः कान्तैः = कमनीयैः, कुसुमैः = पुष्पैः सुशोभितं कल्पवृक्षम् आद्राक्षीत् = अभीष्टार्थदायिनं देववृक्षम् अपश्यत्। तस्य च स्कन्धे = प्रकाण्डे, सद्रत्न पर्यङ्कोपरि = सन्ति उत्कृष्टानि रत्नानि मणयो यत्र तादृशः पर्यङ्कः खट्वा तस्य उपरि स्थिताम् अत्यद्भुताकारां कमनीयां कामपि कन्यकामैक्षत। अहो किमेतत्–इति स मन्त्री यावद् ध्यायति = चिन्तयति स्म, तावत् सा कन्या वीणापाणिः = वीणा, पाणौ = हस्ते यस्या सा गातुम् उपचक्रमे = आरेभे, येन यत् कर्म बीजम् उप्तं = आहितं, स निश्चितं तत् = कर्मणः फलं भुङ्क्ते, पूर्वं कृतं हि कर्म विधिना = ब्रह्मणा अपि अन्यथाकर्तुं = परिवर्तितुं न शक्यते। इति सङ्गीतस्य अर्थं प्रकटय्य =

ऊपर उठे मूंगे की शाखाओं वाले, सोने के समान चमकते हुए फुनगियों से युक्त मणियों के फलों और सुन्दर फूलों से सुशोभित कल्पवृक्षको देखा। उसकी तने पर सुन्दर रत्नों की पलंग पर बैठी अद्भुत आकार वाली कमनीय किसी कन्या को देखा। अहो यह क्या है - जब तक मन्त्री यह सोच रहा था, तब तक हाथ में वीणा लेकर कन्या गाने लगी– जिसने जैसा कर्मबीज बोया है वह निश्चित ही उस फल को भोगता है, पूर्व जन्म में किये गये कर्मों को ब्रह्मा भी नहीं बदल सकते - संगीत के इन अर्थ को प्रकट कर वह कन्या क्षणभर में कल्पवृक्ष में स्थित पलंग के साथ वहीं समुद्र के अन्दर चली गयी।

लक्ष्मीन्दु-पारिजाताद्याः अस्मात् न किमुद्गताः?' इति सञ्चिन्तयन्तं दीर्घदर्शिनं विलोक्य विस्मयाऽऽविष्टं कर्णधारादयोऽब्रुवन् –'भद्र! एवमेषा वरकन्या सदैव इह दृश्यते, निमज्जति च क्षणेन, तव तु अस्य नवं दर्शनम्' इति तैरुक्तः स मन्त्री सविस्मयस्तेन निधिदत्तेन समं पोतात् सागरतीरमाससाद। तत्र उत्तारितभाण्डेन तेन वणिजा हृष्टभृत्येन सह

प्रख्याप्य, क्षणादेव = तत्क्षणमेव सा दिव्यकन्या कल्पद्रुमपर्यङ्कसहिता = अभीष्ट वरदायित्व वृक्षे यः पर्यङ्कः तेन सहिता, तत्रैव समुद्रे एव ममज्ज = समुद्रान्तः तिरोहिता अभूदित्यर्थः।

किमपि एतद् अपूर्वम् = अद्भुतम् अद्य मया इह = सागरे पृष्टं, क्व अब्धिः? क्व च दृष्टनष्टोऽयम् आदौ दृष्टः पश्चाद् नष्टः दिव्याङ्गना सहितः तरुः = कल्पद्रुमः। यदि च अब्धेः = समुद्रस्य, ईदृश = एतादृशः एव शश्वदाकारः तथा लक्ष्मीन्दुपरिजाताद्याः = लक्ष्मी विष्णुपत्नी, इन्दुः = चन्द्रः, पारिजातो =देवद्रुमः एतदाद्याः तत्प्रमुखा अस्माद् न किम् उद्गताः = समुद्भूताः? इति संचिन्तयन्तं = विचारयन्तं दीर्घदर्शिनं विलोक्य विस्मयाऽऽविष्टं कर्णधारादयः = नाविकादयः, अब्रुवन् = अकथयन्–भद्र! एवमेव एषा वरकन्यका = उत्तमाङ्गना, सदैव इह दृश्यते = सागरे प्रकटीभवति, निमज्जति च क्षणेन = क्षणाभ्यन्तरे एव अन्तसि लीयते तस्मिन् इति भावः। तव तु अस्य नवं दर्शनं = अपूर्वं दृष्टा सा इति भावः। इति तैः नाविकैः उक्तः स मन्त्री सविस्मयः = चकितः तेन निधिदत्तेन समं पोतात् सागरतीरम् अससाद = तटं प्राप। तत्र = तटे उत्तारित–

यह मैंने क्या अद्भुत देखा जो पहले कभी नहीं देखा था। सागर कहां है, देखा हुआ नष्ट हुआ दिव्य अंगना से युक्त कल्पवृक्ष कहां गया। यदि सागर का यही आकार है तो लक्ष्मी चन्द्रमा पारिजात आदि क्या इससे उद्भूत नहीं हुए है? सोचने वाले विस्मय से आविष्ट दीर्घदर्शी को देख कर कर्णधार आदि ने कहा- हे महापुरुष! यह कन्या इसी प्रकार यहां दिखाई देती है और क्षणभर में डूब जाती है, आप को इसका नया दर्शन हुआ है। इस प्रकार उनके द्वारा बताये जाने पर मन्त्री चकित होकर उस निधिदत्त के साथ सागर के तट पर उतर गया। वहां अपने सभी

स मन्त्री तद्गृहं गत्वा बहून् दिवसान् तत्र सुखेन स्थित्वा तं निधिदत्तमुवाच- 'सार्थवाह ! भवद्गेहे अहं चिरं सुखेन विश्रान्तः, इदानीं स्वदेशं गन्तुमिच्छामि, भद्रमस्तु ते' इत्युक्त्वा तमनिच्छन्तमपि वणिक्पतिमामन्त्र्य स दीर्घदर्शी सत्त्वमात्रसहायस्ततः प्रतस्थे।

क्रमेण नानादेशानतिक्रामन् निजम् अङ्गविषयं प्रायात्।

तत्र यशःकेतुना राज्ञा तदन्वेषणाय नियुक्ताः चारा बहिर्नगरमागतं तं ददृशुः। ततस्तैर्विज्ञप्तो राजा तद्विश्लेषसुदुःखितः स्वयं नगरात् निर्गत्य

भाण्डेन = उत्तारितानि भाण्डानि विक्रेयवस्तूनि येन सः तेन वणिजा हृष्टभृत्येन = हृष्टाः सन्तुष्टाः स्वदेशं प्राप्त्या सेवका यस्य सः तेन सह स मन्त्री तद्गृहं = तस्य निकेतनं गत्वा बहून् दिवसान् तत्र सुखेन स्थित्वा तं निधिदत्तम् उवाच– सार्थवाह! सार्थं समूहं वहति नयति प्रापयति देशान्तरम् इति तत्सम्बोधनम्, भवद्गेहे अहं चिरं सुखेन विश्रान्तः = विश्रामं प्राप्य, इदानीं स्वदेशं गन्तुमिच्छामि, भद्रं कल्याणम् अस्तु इत्युक्त्वा तम् अनिच्छन्तम् अपि वणिक्पतिम् आमन्त्र्य = आपृच्छ्य, सत्त्वमात्रसहायः = सत्त्वम् आत्मबलं धैर्यं तन्मात्रमेव सहायः = सहायकारि यस्य सः ततः = तस्य गृहात् प्रतस्थे = प्रस्थानम् अकरोत्।

क्रमेण = क्रमशः नाना देशान् अतिक्रामन् निजम् अंगविषयं = अंग नामकं देशं प्रायात् = आगच्छत्।

तत्र यशःकेतुना राज्ञा तदन्वेषणाय = तस्य अन्वेषणाय नियुक्ताः चारा

बेचने योग्य वस्तुओं को उतरवा कर प्रसन्न सेवकों से युक्त उस बनिये के साथ उसके घर जा कर वह मन्त्री कुछ दिन तक वहां रहा और फिर निधिदत्त से बोला- सार्थवाह! आपके घर में मैंने बहुत दिनों तक सुख पूर्वक विश्राम किया, अब अपने देश जाना चाहता हूँ, आपका कल्याण हो - ऐसा कहकर उस वणिक्पति की इच्छा न होने पर भी उसकी प्रशंसा करके दीर्घदर्शी सत्त्व अर्थात् केवल धैर्य की सहायता लेकर आत्मबल से सम्पन्न होकर वहां से चल पड़ा।

क्रमशः नाना देशों का अतिक्रमण करता हुआ अंग नामक देश में पहुँच

तमभ्यगात्। ततश्चोपेत्य परिष्वज्य अभिनन्द्य च अध्वश्रमक्षामधूसरं तम् अभ्यन्तरमनयत् अब्रवीच्च तं विश्रान्तं–'मन्त्रिन् ! अस्मान् त्यक्त्वा त्वया किमर्थ यावच्छरीरं निःस्नेहपरुषामिमां दशां मानसं नीतम्? अथवा भगवतो भवितव्यस्य गतिं विचित्रां को विज्ञातुमर्हति? येन अकस्मात् ते तीर्थादिभ्रमणे मतिरेषाऽभवत्; तत् ब्रूहीदानीं के त्वया देशा भ्रान्ताः, किञ्च नवं वस्तु दृष्टम्? इति।

गुप्तचराः, बहिर्नगरम् आगतं तं ददृशुः = अपश्यन्। ततः तैः चारैः विज्ञप्तो = सूचितो राजा तद् विश्लेषसुदुःखितः = तस्य विश्लेषो वियोगः तेन सदृशं दुःखितः स्वयं नगरात् निर्गत्य तम् अभ्यगात्। ततः च उपेत्य = समीपं गत्वा परिष्वज्य = आलिङ्ग्य, अभिनन्द्य = अध्वश्रमक्षामधूसरम् = अध्वश्रमेण मार्गपरिश्रमेण क्षामः कृशश्चासौ धूसरो मलिनः तम् अभ्यन्तरम् = अन्तःपुरम्, अनयत् = नीतवान्, अब्रवीत् च तं विश्रान्तं = अपगतश्रमं–मन्त्रिन्! अस्मान् त्यक्त्वा = परित्यज्य त्वया किमर्थं यावच्छरीरं = देहावधि, निःस्नेहपरुषाम् = निर्गतः स्नेहो यस्या सा निःस्नेहा सा चासौ परुषा कठोरा तां इमां दशां मानसं नीतम्? अथवा भगवतो भवितव्यस्य = भाग्यस्य गतिं विचित्रां को विज्ञातुमर्हति = कः जानाति? येन अकस्मात् ते तीर्थादिभ्रमणे मतिरेषा अभवत्। तद्ब्रूहि = वद इदानीं के त्वया देशाः भ्रान्ता = भ्रमणं कृत्वा दृष्टाः किञ्च नवं वस्तु दृष्टम्? इति।

गया। वहां यशःकेतु राजा ने उसको खोजने के लिए गुप्तचरों को नियुक्त किया था। उन गुप्तचरों ने नगर से बाहर उसे देखा। तब गुप्तचरों द्वारा सूचित किये जाने पर उसके वियोग में अत्यधिक दुःखी राजा ने स्वयं नगर से बाहर जाकर उसका स्वागत किया। वहां जाकर आलिंगन कर तथा अभिनन्दन कर मार्ग की थकान से दुर्बल और मलिन उस को अन्दर ले गया और थकान दूर होने पर पूछा – हे मन्त्री! हमें त्याग कर आप देहावधि स्नेह से रहित इस कठोर दशा में अपने मन को क्यों ले गये? अथवा भाग्य की विचित्र गति को कौन जान सकता है, जिस के कारण तुम्हारी तीर्थयात्रा आदि भ्रमण में बुद्धि हो गयी, अब बताइये आपने कौन देशों में भ्रमण किया, क्या नई वस्तु देखी?

ततः स क्रमात् वर्णयन् सुवर्णद्वीपान्तम् अध्वानम् अब्धौ समुत्थितां गायन्तीं त्रिजगत्सारभूतां कल्पतरुस्थितां तां दिव्यकन्यकां तस्मै यथावदकथयत्।

राजा तु तत् श्रुत्वैव तथा स्मरवशोऽभवत्, यथा तया विना राज्यजीविते निष्फले अमन्यत; अवदच्च तं मन्त्रिणम् एकान्ते नीत्वा- 'मन्त्रिन्! मयाऽवश्यमेव सा द्रष्टव्या, नो चेत् मे जीवितं नास्तीत्यवधारय; भवितव्यतां प्रणम्य त्वदुक्तेन पथा गच्छामि, अहं ते न निवारणीयः;, नानुगम्यश्च; गुप्तमेकाकी गच्छामि, राज्यन्तु मे त्वया रक्ष्यम्, इदञ्च

ततः स = मन्त्री, क्रमाद् = क्रमानुसारं वर्णयन् सुवर्ण द्वीपान्तरम् = सुवर्ण द्वीपपर्यन्तम्, अध्वानम् = मार्ग, अब्धौ = समुद्रे गायन्तीं त्रिजगत्सारभूतां = त्रयाणा जगतां सारस्वरूपां कल्पतरुस्थितां तां दिव्यकन्यकां तस्मै राज्ञे यथावत् यथार्थरूपेण अकथयत् = अवदत्।

राजा तु तत् श्रुत्वा एवं तथा स्मरवशोऽभवत् = कामपरवशो जातः। यथा तया विना राज्यजीविते-राज्यं च जीवितं च निष्फले = व्यर्थमेव अमन्यत। अवदत् च तं मन्त्रिणम् दीर्घदर्शिनम् इति यावत् एकान्ते = रहसि, नीत्वा-मन्त्रिन् मया अवश्यमेव सा द्रष्टव्या, नो चेत् मे जीवितं नास्ति= जीवनं नास्ति इत्यवधारय = निश्चयेन जानीहि। भवितव्यतां प्रणम्य त्वदुक्तेन = त्वया निर्दिष्टेन, यथा = मार्गेण गच्छामि। अहं ते न निवारणीयः नानुगम्यः, गुप्तम् एकाकी गच्छामि,

तब उस मन्त्री ने क्रम से सुवर्ण द्वीप तक के मार्ग का वर्णन किया, समुद्र में उठी गाती हुई, तीनों लोकों की सारभूत कल्पतरु में बैठी दिव्यकन्या के बारे में उस राजा से जैसा देखा था वैसा बताया, राजा उसके बारे में सुनते ही काम के वशीभूत हो गया। उसे उसके विना राज्य और जीवन दोनों व्यर्थ लगने लगे। इस मन्त्री को एकान्त में ले जाकर वह बोला - हे मन्त्री! मुझे अवश्य उसे देखना चाहिये, यदि वह नहीं मिलेगी तो मेरा जीवन नहीं बचेगा - यह जानिये। भाग्य को प्रणाम करके आपके द्वारा बताये गये मार्ग से जाता हूँ। मुझे तुम मना नहीं करना और न ही मेरा पीछा करना, छिपकर अकेले ही जाऊंगा, राज्य की

मद्वचो नान्यथा कार्यं, मया असुभिः शापितोऽसि।' इत्युक्त्वा तत्प्रतिवादं निरस्य तं मन्त्रिणं विससर्ज। तदा स दीर्घदर्शी अनल्पोत्सवेऽपि विमना इव आसीत्; स्वामिनि असाध्यव्यसनासक्ते सन्मन्त्रिणां कुतः सुखम्।

अथान्येद्युः स राजा तस्मिन् मन्त्रिणां वरे न्यस्तराज्यभारः निशि तापसरूपधरः यशःकेतुः स्वात् नगरात् प्रतस्थे। गच्छंश्च स पथि कुशं नाम मुनिमपश्यत्। सोऽपि तं प्रणतं तापसकल्पं समादिशत् – 'वत्स!लक्ष्मीदत्तेन वणिजा साकं पोतेन वारिधौ गत्वा अभीष्टां कन्यां प्राप्स्यसि, निराकुलो ब्रज।' इति तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टः प्रणम्य च तं राजा

राज्यं तु मे त्वया रक्ष्यम् = रक्षणीयम्। इदं च मद्वचो = ममवचनं नान्यथा कार्या, मया असुभिः शापितोऽसि? इत्युक्त्वा तत्प्रतिवादं = तस्य मन्त्रिणः, प्रतिवादं = प्रत्याख्यानं, निरस्य = निषिध्य तं मन्त्रिणं विससर्ज। तदा स दीर्घदर्शी अनल्पोत्सवेऽपि = सर्वतः सुखमयेऽपि काले विमना = दुःखित इव आसीत्, स्वामिनि = राज्ञि, असाध्यव्यसनासक्ते = असाध्यं = दुर्निवारं यद् व्यसनं दिव्यकन्याभिलाषरूपं तस्मिन् अनासक्ते सन् मन्त्रिणां कुतः सुखम्?

अन्येद्युः = अपरेह्नि स राजा तस्मिन् मन्त्रिणां वरे = श्रेष्ठेऽमात्ये, न्यस्तराज्यभारः न्यस्तः स्थापितः राज्यभारो येन सः, निशि = रात्रौ तापस रूपधरः यशःकेतुः स्वात् = स्वकीयात् नगरात् प्रतस्थे। गच्छंश्च स पथि = मार्गे कुशं नाम मुनिम् अपश्यत्। सोऽपि तं प्रणतं = प्रणामं कुर्वन्तं, तापसकल्पं=

रक्षा आप करेंगे। मेरे इस वचन को अस्वीकार न करो, प्राणों से मैं तुमको शापित करता हूँ। (अर्थात् तुम्हें मेरे प्राणों की कसम, तुम मना मत करना) ऐसा कह कर उस मन्त्री ने निषेध को काट कर उसे भेज दिया। वह दीर्घदर्शी सब कुछ सुखमय होते हुए भी दुःखी रहने लगा। स्वामी यदि असाध्य व्यसन में आसक्त हो तो अच्छे मन्त्रियों को सुख कहां?

दूसरे दिन उस श्रेष्ठ मन्त्री पर राज्य का भार सौंप कर रात में तापस का रूप रख यशः केतु राजा अपने नगर से चल पड़ा। जाते हुए मार्ग में उसने कुश नाम के मुनि को देखा। प्रणाम करते हुए तापस से लगने वाले उस राजा से मुनि

गच्छन् देशान् नदीः अद्रीश्चातिक्रम्य तमम्बुधिमासससाद; तस्य च तीरे मुनिप्रोक्तेन तेन लक्ष्मीदत्तेन स्वर्णद्वीपं यियासुना वाणिजा सहसा अस्य सङ्गतिरजायतः। तेन च चक्राङ्कपादमुद्रादिदर्शनात् प्रह्वेन सह स नृपः प्रवहणमारुह्य अम्बुधौ प्रतस्थे। सम्प्राप्ते मध्यमब्धेस्तस्मिन् प्रवहणे सहसा कल्पविटपिस्कन्धाधिरूढा सा कन्यका उदगात्। यावत् राजा चकोरश्चन्द्रिकामिव तां पश्यति, तावत् सा तथैव बल्लकीवाद्यसङ्गतं गायति स्म-'यत् कर्मबीजं येन प्रागुप्तं, तत्फलं तेन निश्चितं भोक्तव्यं, पूर्वकृतं हि विधिरपि नान्यथाकर्तुं प्रभवति; तस्मात् यत्र यथावत् यस्य

तद्वेशधरं समादिशत्–वत्स! लक्ष्मीदत्तेन वणिजा साकं वारिधौ = समुद्रे पोतेन गत्वा अभीष्टां कन्यां प्राप्स्यसि निराकुलो प्रशान्तहृदयः सन् व्रज = गच्छ। इति तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टः = प्रसन्नः प्रणम्य च तं राजा गच्छन् देशान् नदीः अद्रीन् = पर्वतान् च अतिक्रम्य तम् अम्बुधिं = सागरम्, आससाद = प्राप। तस्य च तीरे मुनिप्रोक्तेन तेन लक्ष्मीदत्तेन स्वर्णद्वीपं यियासुना = गन्तुम् इच्छुकेन वणिजा सहसा अस्य संगतिः = संयोगः, अजायत, तेन च चक्राङ्कपादमुद्रादिदर्शनात् = चक्राख्यस्य आयुधविशेषस्य अंकं, चिह्नं ययोः तौ तादृशौ पादौ तयोः या मुद्रा प्रतिच्छविः तद् आदिराजचिह्नदर्शनात्, प्रह्वेन = 'महापुरुषोऽयम्' इति मत्त्वा

ने कहा—बेटा! लक्ष्मी दत्त नाम के बनिये के साथ समुद्र में जहाज से जाकर तुम अभीष्ट कन्या को प्राप्त कर लोगे। निराकुल हृदय हो शान्त मन से जाओ। उसका ऐसा वचन सुनकर प्रसन्न होकर तथा उसे प्रणाम करके राजा यशः केतु जाते हुए देशों, नदी, पर्वतों को पार कर उस समुद्र के पास पुहंचा। उसके तट पर मुनि के द्वारा कहे हुए उस लक्ष्मीदत्त बनिये के साथ जो स्वर्ण द्वीप जाने का इच्छुक था, सहसा इसकी भेंट हो गयी। उसने चक्र के चिह्न से युक्त मुद्रा आदि राजचिन्ह के दर्शन से 'यह महापुरुष है'—यह समझ कर नम्र हुए उस वणिक के साथ जहाज में चढ़कर उसने सागर की ओर प्रस्थान किया। जहां के बीच में पहुँचने पर अकस्मात् कल्पवृष की शाखा पर बैठी हुई कन्या उपर उठ आई।

यत् दैवयोगेन भवितव्यं, तत्र तेन भवितव्येनासौ जन्तुर्विवशो नीयते' इति सूचितभाव्यर्था गीतिकां गायन्तीं तां पश्यन् राजा तत्क्षणं स्मरशराहतः निस्पन्द एवातिष्ठत्। 'हे रत्नाकर! तुभ्यं नमोऽस्तु, येन त्वया इमां प्रच्छाद्य श्रिया हरिर्विप्रलब्धः, तत् त्वां शरणं प्रपन्नोऽस्मि, त्वं मे इष्टसिद्धिं विधत्स्व।' यावदित्थं स राजा समुद्रं स्तौति स्म, तावत् सा कन्यका सपादपा तत्र न्यमज्जत्।

नम्रीभूतेन सह नृपः प्रवहणम् = पोतम् आरुह्य अम्बुधौ प्रतस्थे। सम्प्राप्ते मध्यमब्धे = समुद्रमध्ये गते तस्मिन् प्रवहणे सहसा = अकस्मात्, कल्पविटपिस्कन्धाधिरूढा-कल्पद्रुमस्य काण्डम् अधिरूढा सा कन्यका उदगात् = उपरि आयात्। यावत् राजा चकोरचन्द्रिकामिव = यथा चकोरो नाम पक्षी चन्द्रिकां ज्योत्स्नाम् एव समुत्कण्ठितः सन् पिबति तथा तां पश्यति, तावत् सा तथैव वल्लकी = वीणा वाद्यसंगत गायति स्म-यत् कर्मबीजं येन प्राग् उप्तं तत्फलं तेन निश्चितं भोक्तव्यं, पूर्वकृतं हि विधिः = ब्रह्मा अपि अन्यथाकर्तुं = परिवर्तयितुं न प्रभवति।

जब तक राजा जैसे चकोर चन्द्रिका को अपलक नेत्रों से पान करता है वैसे उस कन्या को देखता रहा, तब तक वह कन्या हाथ में वीणा लेकर गाने लगी - जिसने जो कर्म का बीज बोया है, उसका फल अवश्य भोगना है, पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के फलों को ब्रह्मा भी नहीं बदल सकता।

इसलिये जहां जिसका जो भाग्य से होने वाला है उस भवितव्य (होनी) से जन्तु परवश किया जाता है। - ऐसी भावी भाग्यफल की सूचना देने वाले गीत को गाती हुई उसे देखते हुए राजा काम के बाणों से अभिभूत हो कर निस्पन्द बैठा रहा, हे समुद्र! तुमको नमस्कार है, जिससे तुमने इसको लक्ष्मी के रूप में ढ़क कर भगवान विष्णु को छल दिया, अर्थात् यह लक्ष्मी के समान सुन्दर है साक्षात् लक्ष्मी लग रही है, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरी इष्ट सिद्धि करो, जब तक राजा समुद्र की इस प्रकार स्तुति करता रहा, तब तक वह कन्या पेड़ सहित वहीं डूब गयी।

तदवलोक्यैव स राजा तामनु आत्मानं सिन्धौ प्राक्षिपत्। तद्वीक्ष्य स सज्जनः लक्ष्मीदत्तः तं विनष्टं मत्वा दुःखात् देहं त्युक्तं समुद्यतोऽभवत्। 'मा तावत् साहसं कार्षीः, मग्नस्यास्य अम्बुधौ भयं नास्ति, एष राजा यशःकेतुर्नाम तापसरूपभृत्, अस्या एव कन्याया अर्थे समायातः, इयं हि अस्य पूर्वभार्या, एतां प्राप्य पुनरसौ अङ्गराज्यं गमिष्यति' इति गगनादुद्गतया वाचा समाश्वसितोऽसौ सार्थवाहः यथाकाममिष्टं देशं स्वार्थसिद्धये जगाम।

राजा यशःकेतुश्च अम्बुधौ मग्नः अकस्मात् दिव्यमेकं नगरमद्राक्षीत्। सविस्मयश्च तत् नगरं भास्वन्मणिमयस्तम्भैः काञ्चनोज्जवलभित्तिभिः

तद अवलोक्य स राजा ताम् अनु आत्मानं सिन्धौ प्राक्षिपत्। तद्वीक्ष्य = तद् दृष्ट्वा स सज्जनः लक्ष्मीदत्तः। तं विनष्टं मृतं मत्त्वा दुःखाद् देहं त्यक्तुं समुद्यतः = प्रवृत्तः, अभवत्। मा तावत् साहसं = देह त्यागरूपं कार्षीः = कुरु, मग्नस्यास्य = अस्य अम्बुधौ निमग्नस्य राज्ञः भयं नास्ति, एष राजा यशःकेतुः नाम तापसरूपभृत् तापसवेशी, अस्या एव कन्याया अर्थे समायातः, इयं हि अस्य पूर्वभार्या, एतां प्राप्य पुनः असौ अंगराज्यं गमिष्यति इति गगनाद् उद्गतया वाचा = आकाशवाण्या समाश्वासितोऽसौ सार्थवाहः = व्यापारी, यथाकामं = स्वेच्छया इष्टं देशं स्वार्थसिद्धये = स्वप्रयोजनप्राप्तये जगाम।

राजा यशःकेतुश्च अम्बु ौ = समुद्रे मग्नः, अकस्मात् = सहसा दिव्यम्

उसे देखकर राजा उसके पीछे समुद्र में डूब गया। यह देख सज्जन लक्ष्मीदत्त उसे मरा जान दुःख से देहत्याग करने को तैयार हो गया। साहस मत करो, डूबे हुए इसको समुद्र में डर नहीं है, यह तापस वेश धारी राजा यशःकेतु है। इस कन्या के लिए यहां आया है, यह इसकी पूर्वजन्म की भार्या है, इसे प्राप्त कर पुनः यह अङ्ग राज्य चला जायेगा – इस आकाश वाणी से आश्वस्त होकर वह बनिया अपने प्रयोजन की सिद्धिके लिए अपेक्षित देश को चला गया।

राजा यशःकेतु ने समुद्र में डूब कर अकस्मात् एक दिव्य नगर को देखा। वह नगर चमकते हुए रत्नों के खम्भों, सोने के दीवारों, मोतियों के जाल से बनी

मुक्ताजालगवाक्षकैः प्रासादैः विराजमानं, नानारत्नशिलाबद्धसोपान-वापिकैः कामदैः कल्पवृक्षाढ्यैरुद्यानैरुपशोभितं दृष्टवा समृद्धेऽपि तत्र पुरे निर्जने गृहं प्रविश्य यदा तां प्रियां क्वापि न दृष्टवान्, तदा विचिन्वन् उत्तुङ्गमेकं मणिमन्दिरमारुह्य तद्वारमुद्धाट्य तत्र प्रविवेश। प्रविश्य च तत्र सद्रत्नपर्य्यङ्कस्थितां वस्त्राऽऽच्छादितसर्वाङ्गां शयानाम् एककामैक्षिष्ट– 'किं स्यात् सैवेयम्?' इति सोत्कण्ठं यावत् तन्मुखमुद्घाटयति, तावत् तामेव ईप्सितां कन्यकामद्राक्षीत्, तद्दर्शनेन चास्य तदा काऽपि अवस्था

एकं नगरम् अद्राक्षीत् = अपश्यत्। सविस्मय = चकितः च तत्र नगरं मणिमयैः = रत्नजटितैः स्तम्भैः भास्वत् = दीप्यमानं, काञ्चनेन उज्ज्वलैः भित्तिभिः मुक्ताजालगवाक्षकैः प्रासादैः विराजमानं नाना रत्नानां शिलाभिः आबद्धानि सोपानानि वाप्यां यत्र तैः, कामदैः = अभीष्टदायकैः, कल्पवृक्षैः आढ्यैः = समृद्धैः, उद्यानैः = उपवनैः उपशोभितं दृष्ट्वा समृद्धेऽपि = वैभवसम्पन्नेऽपि तत्र निर्जने= जनविहीने गृहं गृहं = प्रतिगृहं प्रविश्य यदा तां प्रियां क्वापि न दृष्ट्वान् = अपश्यत्, तदा विचिन्वन् = अन्विषन्, उत्तुङ्गम् = उच्चस्थम् एकं मणिमन्दिरम् आरुह्य तद्वारम् उद्घाट्य तत्र प्रविवेशः प्रवेशं चकार। प्रविश्य च तत्र सद्रत्नपर्यङ्कस्थितां वस्त्राच्छादितसर्वाङ्गां = वस्त्रेण आच्छादितानि सर्वाणि अङ्गानि यस्या सा तां, शयानाम् एकैकाम् ऐक्षिष्ट = अपश्यत्। किं स्यात् सा एव इयम्? इति सोत्कण्ठं = उत्कण्ठया सहितं यावत् तन्मुखं = तस्या वदनम् उद्घाटयति, तावत्ताम् एव ईप्सितां कन्यकाम् अद्राक्षीत्। तद्दर्शनेन = तस्याः दर्शनेन च अस्य तदा कापि

खिड़कियों से युक्त भवनों से सुशोभित था। उसमें नाना प्रकार की रत्नों की शिलाओं से बनी हुए सीढ़ियों वाली तलैया थी, उसमें कामनाओं को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्षों से भरे हुए उद्यानों से सुशोभित उस नगर को चकित हो कर देखा। उस समृद्ध नगर में निर्जन घरों में प्रवेश करता हुआ जब उसने अपनी प्रिया को नहीं देखा, तब उसे खोजता हुए ऊंचे मणि मन्दिर में चढ कर उसका दरवाजा खोल कर अन्दर घुसा। वहां प्रवेश करके सुधा रत्नों की पलंग पर कपड़ों से सभी अंगों को ढकी सोयी हुई एक स्त्री को देखा। क्या यही वह है ऐसी जिज्ञासा में जैसे ही उसका मुख खोला वैसे ही चाही गयी उसी कन्या को

ग्रीष्मर्त्तुमरुपान्थस्य सरिद्दर्शनेनेवाभवत्।

साऽपि उन्मीलितलोचना तं कल्याणाकृतिलक्षणं काम्यं प्राप्तं वीक्ष्य सम्भ्रमात् शयनमजहात्। ततश्च कृताऽऽतिथ्या आनतमुखी फुल्लेक्षणोत्पलन्यासैः पादयोः पूजयन्ती शनैरभ्यधात् —'महाभाग ! को भवान् ? कथमिदमगम्यं रसातलं प्रविष्टोऽसि? राजलक्षणाङ्कितततनोस्ते तापसव्रतं किमिदम्? महाभाग ! यदि ते मयि प्रसादस्तदा एतदाख्याहि।'

एवं तस्या वचः श्रुत्वा स राजा तां प्रत्युवाच —'सुन्दरि ! अहमङ्गराजः यशःकेतुर्नाम, आप्ताज्जनादिहाम्बुधौ दृश्यां त्वामश्रौषं, ततस्त्वदर्थम् इमं वेषं कृत्वा राज्यं विमुच्य आगत्य च अनुमार्गेण इह

अवस्था ग्रीष्म ऋतौ मरु पान्थस्य =मरुभूमौ पथिकस्य सरिद् दर्शनेन एव अभवत्।

राजलक्षणाङ्कितततनोः = राज्ञां लक्षणैः अङ्कितः तनुः यस्य तस्य ते तापसव्रतं किम् इदम्? महाभाग यदि ते मयि प्रसादः तदा एतदाख्याहि।

एवम् = इत्थं, तस्याः = कन्यायाः, वचः = वचनं श्रुत्वा स राजा तां प्रत्युवाच = अवदत्। सुन्दरि ! अहम् अंगराजः यशःकेतुनाम, आप्तात् सत्यवादिनः जनात् इह अम्बुधौ = अस्मिन् दृश्यां त्वां = दर्शनीयां त्वाम्, अश्रौषम् = तव विषये श्रुतवान्। ततः = तदनन्तरं, त्वदर्थम् = तव प्राप्तये इमं वेषं कृत्वा =

देखा। उसके दर्शन से उसकी वही अवस्था हो गई जैसे ग्रीष्मऋतु में मरुस्थल में जाते हुए पथिक की नदी को देखने से होती है।

वह भी आँखें खोलकर कल्याणमयी आकृति वाले, कामना करने योग्य को प्राप्त देख कर शय्या छोड़ खडी हुई। उसके बाद आतिथ्य कर के नीचे मुख की हुई खिले हुए कमल के समान नेत्रों से पैरों की पूजा करती हुई धीरे से बोली- महाशय! आप कौन हैं? इस अगम्य रसातल मैं कैसे आ गये?

राजाओं के लक्षणों से अंकित शरीर वाले तुमने तपस्वियों का व्रत क्यो लिया है। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो बताइये।

इस प्रकार उस कन्या के वचन सुन कर उस राजा ने कहा - हे सुन्दरि ! मैं यशःकेतु नाम का राजा हूं। सत्य वचन बोलने वाले व्यक्ति (आप्तजन) से

प्रविष्टोऽस्मि, तन्मे काऽसि त्वं कथय।' इति तेनोक्ता सा सलज्जा सानुरागा च तमभ्यधात् -'महाभाग ! मृगाङ्कसेन इति श्रीमानस्ति विद्याधराधिपः, मां मृगाङ्कवतीं नाम तस्याऽऽत्मजां विद्धि। स पिता मामस्मिन् नगरे एकाकिनीं विमुच्य केन हेतुना सपौरजनः क्वापि गतः, इत्यहं न जाने; तेनाहं शून्यवसतेरस्मात् वारिधौ उन्मज्य कल्पद्रुमाऽऽरूढा भवितव्यतां गायामि'।

एवमुक्तवती सा तस्य मुनेर्वचः स्मरता तेन राज्ञा पेशलैः सुवचोभिः

तापसरूपमवधृत्य, राज्यं विमुच्य = परित्यज्य आगत्य च अनुमार्गेण = तत् पश्चात् मार्गेण इह प्रविष्टोऽस्मि, तन्मे = तस्माद् मे काऽसि त्वं कथय। इति तेन = राज्ञाः, उक्ता सा सलज्जा = लज्जया सह, सानुरागा = अनुरागेण च तम् = राजानम्, अभ्यधात् = अवदत्–महाभाग ! मृगाङ्कसेन इति श्रीमान् अस्ति विद्याधराधिपः = विद्याधराणां राजा, मां मृगाङ्कवतीं नाम तस्यात्मजां विद्धि = जानीहि। स पिता माम् अस्मिन् नगरे एकाकिनीं विमुच्य = परित्यज्य केन हेतुना सपौरजनः पुरे वसंतीति पौराः, पौरेव सहितः, सपौरः, क्वापि = कुत्रचिद् गतः- इत्यहं न जाने, तेन अहं शून्य वसतेः = निर्जनाद् अस्य वारिधौ उन्मज्य = बहिः आगत्य कल्पद्रुमारूढा भवितव्यातां गायामि।

एवम् = इत्थम् उक्तवती सा = कन्या तस्य मुनेः = कुशस्य वचनं स्मरता

तुम्हारे विषय में सुन कर, तुम्हारे लिए ऐसा वेष रख कर राज्य छोड़कर तुम्हारे पीछे इस मार्ग से यहां आया हूँ, इसलिए तुम कौन हो यह मुझे बताओ। इस प्रकार उस के द्वारा कही गयी वह लज्जा और अनुराग के साथ उससे बोली–हे महानुभाव मृगाङ्क सेन नाम का विद्याधरों का एक राजा है, मुझे उसी की पुत्री मृगाङ्कवती जानो। वह पिता मुझे इस नगर में अकेली छोड़कर अपने पुरवासियों के साथ कहां चला गया– यह मैं नहीं जानती। इस कारण इस शून्य स्थान से इस समुद्र से बाहर निकलकर कल्पवृक्ष में चढ़कर मैं भवितव्यता (होनी) को गाती हूँ।

ऐसा कहने वाली वह कन्या उस कुश नामक मुनि के वचनों का स्मरण

तथा अरज्यत, यथा अनुरागविवशा तत्क्षणं तस्य वीरस्य भार्यात्वम् अङ्गीकृत्य समयमेकमभ्यधात् –

'आर्यपुत्र ! प्रतिमासं शुक्लकृष्णचतुर्दश्याम् अष्टम्याञ्च अनायत्ता चतुरो दिवसान् यत्र क्वापि गच्छन्ती अहं त्वया न निवार्या, नापि द्रष्टव्या; अत्र हि कारणं विद्यते' इति।

ततः 'तथा' इति प्रतिपद्य स राजा गान्धर्वेण विधिना तां परिणीय तत्र तया सह दिव्यं भोगसुखं बुभुजे।

एकदा सा मृगाङ्कवती दिव्यसम्भोगसुखावस्थितं तं भूपं प्राह

तेन राज्ञा = यशःकेतुमापेशलैः = कोमलैः, सुवचोभिः = सुन्दरैः वचनैः तथा अरज्यत = सन्तोषं प्रापिता, यथा अनुरागविवशा = प्रेम्णा पराधीना सती तत्क्षणं = शीघ्रम् एव तस्य वीरस्य भार्यात्वम् = पत्नीत्वम्, अंगीकृत्य = स्वीकृत्य, समयं = नियमम् एकम्, अभ्यधात् = अब्रवीत्–आर्यपुत्र ! प्रतिमासं शुक्लकृष्ण चतुर्दश्यां अष्टम्यां च अनायत्ता = स्वतन्त्रा सती चतुरो दिवसान् यत्र क्वापि गच्छन्ती अहं त्वया न निर्वाया, नापि द्रष्टव्या। अत्र हि कारणं विद्यते, ततः तथा इति प्रतिपद्य = स्वीकृत्य स राजा गान्धर्वेण विधिना गन्धर्वजाति सिद्धेन विवाहविधिना तां परिणीय तत्र तया सह दिव्यं भोगं बुभुजे = भुक्तवान्।

एकदा = एकवारं सा मृगाङ्कवती दिव्य सम्भोगसुखावस्थितं दिव्य = सम्भोगेन यत्सुखं तत्रावस्थितं तं भूपं प्राहक्ष–'नाथ! त्वमिहैव प्रतीक्षस्व,

---

करते हुए उस राजा यशःकेतु के द्वारा कोमल सुन्दर वचनों के द्वारा इस प्रकार सन्तुष्ट की गई, जिससे उसने प्रेम परवश होकर उस वीर की भार्या होना स्वीकार कर लिया और एक शर्त रखते हुए बोली–आर्यपुत्र ! प्रत्येक महीने की शुक्ल और कृष्ण चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि में स्वतन्त्र होकर चार दिन मैं कहीं भी जाऊँगी तो आप के द्वारा न रोकी जाऊं और न देखी जाऊं। इस विषय में कुछ कारण है। तब ठीक है ऐसा स्वीकार करके राजा ने उसके साथ गान्धर्व विवाह किया और दिव्य भोगों का भोग किया।

एक बार वह मृगाङ्गवती दिव्य संभोग जन्य सुख में विद्यमान उस राजा

स्म–'नाथ ! त्वमिहैव प्रतीक्षस्व, कार्यार्थं क्वापि अहं यामि, अद्य सा कृष्णचतुर्दशी मम सम्प्राप्ता। आर्यपुत्र! इहस्थश्च अमुं स्फाटिकं गृहं मास्म गमः, मा अत्र वाप्यां निपतितो भव, तर्हि भूलोकं त्वं तत्क्षणं गमिष्यसि' इत्युत्त्वा तमामन्त्र्य तस्मात् पुरात् सा बहिरगात्। राजाऽपि गृहीतखङ्गस्तां जिज्ञासुरन्वगमत्, अद्राक्षीच्च तमःश्यामव्यात्तवक्त्रविलं साकारमिव पातालमागच्छन्तं कमपि राक्षसम्। स च राक्षसः निपत्यैव

कार्यार्थं क्वापि अहं यामि = गच्छामि, अद्य सा कृष्ण चतुर्दशीतिथिः मम सम्प्राप्ता। आर्यपुत्र! इहस्थ = इह स्थितः सन् त्वं अमुं = पुरो दृश्यमानं, स्फाटिकं = स्फटिकनिर्मितं गृहं मा स्मगमः = न गच्छेः। मा अत्र वाप्यां निपतितो भव, तर्हि = तदा पतिते सति वाप्यां भू लोकं त्वं तत्क्षणं गमिष्यसि' इत्युक्त्वा तम् आमन्त्र्य = आपृच्छ्य तस्मात् पुरात् = पातालनगरीतः स्म बहिरगात् = बहिर्ययौ। राजा अपि गृहीतखड्गः = गृहीतः खड्गः येन सः तां जिज्ञासुः सन् अन्वगमत् = अनुसरणं कृतवान् तस्याः इति भावः। सः अद्राक्षीत् = अपश्यत् च तमःश्यामव्यात्तवक्त्रविलं = तमः अन्धकारम् इव श्यामं कृष्णवर्णं व्यात्तं = विवृतं, वक्त्रविलं = मुखरूपिणं कुहरं येन सः तं साकारमिव पातालं मूर्तिमत् = रसातलमिव आगच्छन्तं कमपि राक्षसम्। स च राक्षसः निपत्य एव = उत्प्लुत्य एव, घोरं = भयंकरं, एवं = शब्दं कुर्वन् तां मृगाङ्कवतीं, वक्त्रे = मुखे निक्षिप्य। निगीर्णवान् = गिलितवान्। तदवलोक्य एव स राजा अति कोपेन

से बोली – नाथ! तुम यहीं प्रतीक्षा करो, कार्य के लिए में कहीं जाती हूं, आज वह कृष्ण चतुर्दशी आ गयी है। आर्यपुत्र! आप यहां रहते हुए स्फटिक के इस घर में कभी मत जाइयेगा, इस वापी में कूदियेगा नहीं, अन्यथा शीघ्र ही भूलोक में चले जायेंगे–यह कह कर उससे पूछ कर उस नगर से बाहर चली गई। राजा ने भी हाथ में तलवार ले कर जिज्ञासु होकर उसका पीछा किया और अन्धकार से समान काले फैलाये मुखकुहर वाले साकार रसातल के समान राक्षस को आते हुए देखा। वह राक्षस कूद कर भयंकर शब्द करते हुए उस मृगांकवती को मुख में रख कर निगल गया। यह देख कर राजा ने अत्यधिक क्रोध से

घोरं रवं कुर्वन् तां मृगाङ्कवतीं वक्त्रे निक्षिप्य निगीर्णवान्। तदवलोक्यैव स राजा अतिकोपेन सहसा ज्वलन् निर्मोकमुक्तभुजगश्यामलेन महाऽसिना क्रोधाऽऽकृष्टेन धावित्वा रक्षसस्तस्य सन्दष्टौष्ठपुटं शिरश्चिच्छेद।

ततो मोहनिशाऽन्धे विनष्टगतिके कान्तावियोगार्त्ते नृपे अकस्मात् मेघमलिनस्य तस्य रक्षसः अङ्गं भित्त्वा उद्योतितदिक्चक्रा विमला चन्द्रमूर्त्तिरिव सा मृगाङ्कवती जीवन्ती अक्षताङ्गी विनिर्ययौ।

तां तथा सङ्कटोत्तीर्णां कान्तां दृष्ट्वा राजा– 'एहि एहि' इति वदन्

सहसा ज्वलन् प्रदीप्तः निर्भीकमुक्तभुजगश्यामलेन = कञ्चुकरहितसर्पवत् कृष्णवर्णेन क्रोधाकृष्टेन = कोपवशाद् आकृष्टेन महासिना = महता खड्गेन धावित्वा रक्षसस्तस्य, सन्दष्टौष्ठपुटं = संन्दष्टे ओष्ठपुटे यस्य तादृशं शिरः = मस्तकं, चिच्छेद = अकर्तयत्।

ततः = तत्पश्चात्, मोहनिशाऽन्धे = मोहो मूर्छा स एव निशा रात्रिः तया अन्धे, विनष्टगतिके = विनष्टा भ्रष्टा गतिर्यस्य तस्मिन्, कान्तायाः वियोगेन विरहेण आर्ते = दुःखिते = प्रियाविरहकातरे नृपे अकस्मात् मेघ = घन इव मलिनस्य तस्य रक्षसः अंगं भित्त्वा उद्योतितदिक्चक्रा = उद्योतितं प्रकाशितं दिक्चक्रं = दिङ्मण्डलं यस्या सा विमला = निर्मला चन्द्रमूर्तिरिव सा मृगाङ्कवती जीवन्ती अक्षताङ्गी = न क्षतानि अङ्गानि यस्या सा, विनिर्ययौ = आगतवती।

तां तथा संकटेन उत्तीर्णां कान्तां दृष्ट्वा राजा 'एहि एहि' इति वदन् प्रधाव्यैव प्रकृष्टं तीव्रं धावन् आलिलिङ्ग। प्रिये किम् एतत्? स्वप्नोऽयम् उत

जलते हुए केंचुली छोड़ बाहर निकले हुए काले सांप के समान क्रोध में खीचे गये खड्ग से दौड़कर ओठों को चबाने वाले उस राक्षस का सिर काट डाला।

राजा के तब मोह रूपी अन्धकार से अन्धे बने हुए, नष्ट गति वाले, कन्या के विरह से कातर होने पर अकस्मात् मेघ के समान काले उस राक्षस के अंगों को फोड़कर दिशाओं को आलोकित करने वाली निर्मल चन्द्रमा की मूर्ति के समान वह मृगाङ्कवती अक्षत अंगों वाली होकर जीवित उसके मुख से निकल आई।

इस प्रकार संकट से छूटी उस कन्या को देख कर आओ - आओ कहते

प्रधाव्यैव आलिलिङ्ग। 'प्रिये ! किमेतत् ? स्वप्नोऽयमुत माया?' इति तेन पृष्टा सा संस्मृत्य विद्याधरी प्रत्यभाषत-'आर्यपुत्र! शृणु,नायं स्वप्नः, नापि माया; अयं हि विद्यारेन्द्रस्यपितुर्मम शापोऽभूत्। स मे पिता बहुपुत्रोऽपि इह वसन् वात्सल्यात् मया विना आहारं नाकरोत्। अहञ्च सर्वदा इह निर्जनि शर्वपूजाऽऽसक्ता चतुर्दश्याञ्च द्वयोरेव पक्षयोरागच्छम्।

एकदा चतुर्दश्यामिहाऽऽगत्य चिरं गौरीं समर्चयन्त्या मे दैवात् समस्तं दिनमवसितम्। तस्मिन् दिने स मम पिता मत्प्रतीक्षः क्षुधितोऽपि मां प्रति कुपितः किञ्चिदपि नाभुङ्क्त, नापि अपिबत्।

माया इति तेन पृष्टा सा विद्याधरी संस्मृत्य = सम्यक् स्मृत्वा प्रत्यभाषत = प्रत्यवदत्– आर्यपुत्र ! श्रृणु नायं स्वप्नः = स्वप्न वृत्तान्तः अयम् न, नापि माया, अयं हि विद्याधरेन्द्रात् स्व पितुः मम शापोऽभूत्। स मे पिता बहुपुत्रोऽपि इह वसन् वात्सल्यात् मया विना आहारं न अकरोत्। अहं च इह सर्वदा निर्जने= जनशून्ये, शर्वपूजासक्ता =शिवपूजानुरक्ता, चतुर्दश्याञ्च द्वयोः एव पक्षयोः आगच्छन्।

एकदा चतुर्दश्याम् इह आगत्य चिरं बहुकालं यावत् गौरीं समर्चयन्त्या मे दैवात् = संयोगात्, समस्तं दिनम्, अवसितम् = समाप्तम्। तस्मिन् दिने स मम पिता मत्प्रतीक्षः = मम प्रतीक्षा आगमनापेक्षा यस्य सः, क्षुधितोऽपि =

हुए राजा ने दौड़ कर उसका आलिङ्गन किया। प्रिये! यह क्या है? क्या यह स्वप्न है या माया? इस प्रकार पूछी जाती हुई उसने बताया – आर्यपुत्र! सुनिये न यह (स्वप्न है और न माया) यह मेरे पिता विद्याधरेन्द्र का शाप है। वह मेरे पिता अनेक पुत्रों वाले होते हुए भी मेरे विना भोजन नहीं करते थे। मैं सदा इस जनशून्य स्थान में शिव की पूजा में तत्पर रह कर दोनों पक्षों (कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष) में यहां आती थी।

एक बार चतुर्दशी को यहां आ कर गौरी की पूजा करती हुई भाग्य से मेरा पूरा दिन बीत गया। उस दिन मेरे पिता मेरी प्रतीक्षा करते हुए भूखे रह गये और मेरे प्रति कुपित होकर न उन्होंने कुछ खाया न जल ही पिया।

ततो रात्र्याम् उपेतायां सापराधां मामधोमुखीं भवितव्यताबलात् अस्नेहः शपति स्म – 'यथा त्वं मामवज्ञाय क्षुधार्त्तं सर्व दिनं विस्मृतवत्यसि, तस्मात् मासि मासि अष्टम्योश्चतुर्दश्योश्च हरार्च्चनरसात् पुरात् बहिर्यान्तीं त्वां कृतान्तसन्त्रासो नाम राक्षसो निगरिष्यति, ततश्चास्य हृदयं भित्त्वा भित्त्वा निरेष्यसि, शापं ताञ्च निगरणव्यथां न स्मरिष्यसि, एकाकिनी च अत्र स्थास्यसि' इति शापं ददत् स मयाऽनुनीतः ध्यात्वा शापान्तमकरोत्

बुभुक्षितोऽपि मां प्रति कुपितः = क्रोधितः, किञ्चिदपि नाभुङ्क्त = न भुक्तवान्, नापि अपिबत् = न च जलमपि पपौ। ततो रात्र्याम् उपेतायां = समुपस्थितायां निशायां सत्यां सापराधाम् = अपराधेन सहितां माम् अधोमुखीं भवितव्यता बलात् अस्नेहः = स्नेहरहितः सन् शपति स्म–यथा त्वं माम् अवज्ञाय = मम अवज्ञां कृत्वा क्षुधार्तं सर्वं दिनं विस्मृतवती असि, तस्मात् मासि मासि अष्टम्योः चतुर्दश्योश्च हरार्चनरसात् = हरस्य शिवस्य अर्चने पूजने यो रसोऽनुरागः तस्मात् पुरात् बहिर्यान्तीं त्वां कृतान्तसन्त्रासो = कृतान्तस्य यमस्यापि सन्त्रासो भयं यस्मात् एवं विधः नाम राक्षसो निगरिष्यति, ततश्च अस्य हृदयं भित्त्वा भित्त्वा निरेष्यसि = बहिर्गमिष्यसि, शापं ताञ्च निगरणव्यथां = निगरणे राक्षसकृते कवलीकरणे व्यथा पीडा तां न स्मरिष्यसि। एकाकिनी च अत्र स्थास्यति – इति शापं ददत् स मया अनुनीतः = प्रार्थितः ध्यात्त्वा शपान्तम् अकरोत्। यदा

तब रात में जब मैं नीचे मुंह करके उनके समीप पहुंची तो होनी के बल से स्नेह रहित होकर उन्होनें मुझे शाप दिया – जैसे तुमने मेरी अवज्ञा करके मुझ भूखे को पूरे दिन भुला दिया, इस लिए प्रत्येक महीने की अष्टमी और चतुर्दशी को भगवान् शिव की पूजा के लिए बाहर जाती हुई तुमको कृतान्त सन्त्रास (यम की तरह त्रास देने वाला) राक्षस निगल जायेगा। फिर तुम उसके हृदय को फाड़कर बाहर निकलोगी। शाप को उसके निगलने से हुए दुःख को याद नहीं रखोगी, यहां अकेली रहोगी, इस प्रकार शाप देते हुए उनको जब मैंने मनाया तो उन्होंने मेरा शाप मोचन इस प्रकार किया – जब अंगपति यशःकेतु तुम्हारे पति

'यदाङ्गपतिः यशःकेतुस्तव भर्त्ता भूत्वा राक्षसेन निगीर्णां त्वां दृष्टवा तं राक्षसं निहनिष्यति तदा त्वं तस्य हृदयान्निर्गता शापात् मोक्ष्यसे, संस्मरिष्यसि च सर्वा निजा विद्याः।' इति शापान्तमुक्त्वा इह मामेकाकिनीं मुक्त्वा सपरिच्छदो निषधाद्रिं गत; अहं तदादेशेन शापमोहादिहावसम्। स शापश्चास्य मे क्षीणः, जाता च सर्वत्र स्मृतिः, तदद्य तातपार्श्वगमनाय निषधाद्रिं व्व्रामि शापान्ते स्वगतिं प्राप्स्यामि इत्येष मे नियमः। त्वं हि आस्स्व, व्रज वा स्वराष्ट्रम्, अत्र ते स्वातन्त्र्यम्।'

अङ्गपतिः यशःकेतुः तव भर्ता भूत्वा राक्षसेन निर्गीणा त्वां दृष्ट्वा तं राक्षसं निहनिष्यति तदा त्वं तस्य हृदयान्निर्गता शापात् मोक्ष्यसे, संस्मरिष्यसि च सर्वा निजा विद्याः–इति शापान्तम् = शापमोचनम् उक्त्वा, इह माम् एकाकिनीं मुक्त्वा सपरिच्छद = सपरिवारः, निषधाद्रिं गतः, अहं तद् आदेशेन शापमोहात् = शापकृताद् अज्ञानात् इह अवसम्। शापः च अस्य = मम पितुः, मे = मम, क्षीणः = समाप्तः, जाता च सर्वत्र स्मृतिः = सर्वं स्मरामि इति भावः, तद् अद्य = तस्माद् इदानीं तातपार्श्वगमनाय = तातस्य पितुः पार्श्वे समीपे गमनाय निषधाद्रिं = तन्नामकं स्थानं व्रजामि गच्छामि, शापान्ते = शापमोचिते सति स्वगतिं स्वस्य विधाधरोचितां गमनशक्तिं प्राप्स्यामि इति मे नियमः। त्वमिह आस्व = तिष्ठ , ब्रज =गच्छ वा स्वराष्ट्रम्, अत्र ते स्वातन्त्र्यम्।

होंगे और राक्षस के द्वारा निगली हुई तुम्हें देख कर उस राक्षस को मार देंगे तब तुम उसके हृदय से निकल कर शाप मुक्त हो जाओगी और अपनी सभी विद्याओं को याद कर लोगी। इस प्रकार शाप मोचन को बताकर मुझे यहां अकेला छोड़ कर परिवार के साथ वे निषध पर्वत में चले गये। मैं उनके आदेश से शाप कृत अज्ञान के कारण यहीं रही। आज मेरा शाप समाप्त हो गया, सब कुछ याद आ गया, अब पिता के पास जाने के लिए मैं निषध पर्वत जाती हूँ, शाप के अन्त में अपनी गति प्राप्त कर लूँगी यहीं मेरी शर्त है। तुम यहां रहो, अथवा अपने राष्ट्र में जाओ–इसमें तुम्हारी स्वतन्त्रता है, जहां चाहो वहां रहो।

एवं तयोक्तो नृपतिर्दुःखितस्ताम् अभ्यर्थयामास– 'सुन्दरि! सप्ताहानि त्वया न गन्तव्यं, सुमुखि! प्रसीद, इह उद्याने त्वया सह क्रीडन् औत्सुक्यं विनोदयामि। ततस्त्वं पितुः स्थानं गमिष्यसि, अहञ्च स्वस्थानं यास्यामि।'

ततः सः 'तथा' इति प्रतिपन्नया तया कान्तया तस्मिन्नुद्याने सजलोत्पलनेत्रासु 'मा स्म याहि अस्मान् विहाय' इति हंससारसनिचयैः रुवन्तीष्विव उत्क्षिप्तवीचिहस्तासु वापीषु षडहं रेमे।

एवं तया = मृगाङ्कवत्या उक्तः नृपतिः = राजा दुःखितः ताम् अभ्यर्थयामास = प्रार्थयामास–सुन्दरि! सप्ताहानि = सप्तदिनानि त्वया न गन्तव्यम्, सुमुखि! प्रसीद, इह उद्याने त्वया सह क्रीडन् औत्सुक्यं = तव विरहजन्याम् उत्कण्ठां विनोदयामि, ततः = तदनन्तरं त्वं स्वपितुः स्थानं गमिष्यसि अहं च स्वस्थानं स्वदेशं = यास्यामि।

ततः = तदनन्तरं, स = राजा, तथा = आम् इति प्रतिपन्नया = अङ्गीकुर्वन्त्या तया कान्तया तस्मिन् उद्याने सजलोत्पलनेत्रासु = जलेन सहितानि सजलानि उत्पलानि नेत्राणीव यासां तासु मा स्म याहि = गमः अस्मान्, विहाय = परित्यज्य इति हंससारसनिचयैः = हंसानां सारसानां समूहैः, रुवन्तीषु = करुणं शब्दं कुर्वतीषु इव उत्क्षिप्तवीचिहस्तासु = उत्क्षिप्ता ऊर्ध्वं कृताः वीचयः तरङ्गाः हस्ता इव यासां तासु वापीषु = लघुसरःसुषिडहं = षड्दिनानि, रेमे = रमणं चकार।

उसके इस प्रकार कहे जाने पर उस राजा ने दुःखी होकर उससे प्रार्थना की–हे सुन्दरी! एक सप्ताह तक तुम मत जाओ, हे सुन्दर मुख वाली! प्रसन्न होओ, इस उद्यान में तुम्हारे साथ विहार करते हुए अपनी विरह जन्य उत्कण्ठा को दूर करूँगा, तब तुम अपने पिता के स्थान को चली जाओगी और मैं अपने देश चला जाऊँगा।

तब उसके 'ठीक है'–ऐसा कहने पर कान्ता (मृगांकवती) के साथ गीले कमल दल रूपी नेत्रों वाली 'हमें छोड़ कर न जाओ' ऐसा हंस और सारस के शब्दों से कहने वाली, उठती हुई तरंगरूपी हाथों वाली वापियों में छः दिन तक रमण किया।

ततः सप्तमेऽहनि स राजा युक्त्या यत्र भूलोकप्रापिणी द्वारवापिकाऽस्ति, तत्र गृहे तां कान्तामनयत्; तत्र चाऽऽगत्य तां कण्ठे गृहीत्वा तस्यां वाप्यां निपत्य सहसा तया स्वपुरोद्याने वापीमध्यादुत्तस्थौ।

तत्र कान्तासमेतं प्राप्तं तं भूपं दृष्ट्वा उद्यानपालकाः प्रहृष्टा गत्वा मन्त्रिणं दीर्घदर्शिनं जगदुः। सोऽपि आगत्य पादयोः पतित्वा तम् आनीतेप्सिताङ्गनं सपौरोऽभ्यन्तरं प्रावेशयत्। 'अहो! कथं सैषा दिव्याङ्गना

ततः सप्तमेऽहनि स राजा युक्त्या = युक्तिकौशलेन यत्र भूलोकप्रापिणी = भूलोकं प्रापयति नयति तादृशी द्वारवापिका द्वारभूता दीर्घिका अस्ति, तत्र गृहे कान्तां = मृगाङ्कवतीम् अनयत्। तत्र च आगत्य तां कण्ठे गृहीत्वा तस्यां वाप्यां = दीर्घिकायां निपत्य सहसा = अकस्मात् तया सह स्वपुरोधाने स्वीय पुरः नगरस्थित उद्याने या वापी = सरोवरः तन्मध्यात् उत्तस्थौ = उपरि अगात्।

तत्र = तस्मिन् उद्याने, कान्तासमेतं = प्रियया सार्धं प्राप्तं = प्रत्यागतं, भूपं = राजानं दृष्ट्वा उद्यानपालकाः प्रहृष्टाः = प्रसन्नाः सन्तः गत्वा मन्त्रिणं दीर्घदर्शिनं जगदुः = अकथयन्। सोऽपि आगत्य पादयोः पतित्वा तम् आनीतेप्सिताङ्गनं = आनीता ईप्सिता अभीष्टा अङ्गना = विद्याधरकन्या येन सः तं सपौरः = पौरेण सह अभ्यन्तरं = नगरान्तरः प्रावेशयत्। अहो कथं सा एषा = मया पूर्वं दृष्टा इति भावः, दिव्याङ्गना = दिव्या स्त्री अनेन राज्ञा प्राप्ता, या व्योम्नि = आकाशे

तब सातवें दिन वह राजा युक्ति कौशल से जहां भूलोक पहुँचाने वाली द्वार रूपिणी तलैया थी, उस घर में अपनी कान्ता को ले गया, वहां आ कर उसे गले लगा कर उस वापी में गिर पड़ा और एकाएक अपने नगर के उद्यान की वापी में से ऊपर आ गया।

उस उद्यान में प्रिया के साथ आये उस राजा को देखकर उद्यान के रक्षक पहरेदार प्रसन्नता से जाकर मन्त्री दीर्घदर्शी से (उसके आगमन की सूचना देने के लिये) बोले—वह भी आकर पैरों पड़कर अपनी इच्छित स्त्री के लाने वाले उस राजा को पुरवासियों के साथ नगर में ले आया। अहो! ऐसी दिव्य स्त्री इस राजा को कैसे मिल गयी! जो आकाश में बिजली की तरह एक क्षण मुझे दिखाई

अनेन राज्ञा प्राप्ता? या व्योम्नि विद्युदिव क्षणदृश्या मया दृष्टा; धात्रा ललाटाक्षरपङ्क्तिषु यस्य यल्लिखितं तत्तस्य असम्भाव्यमपि अवश्यम् उपतिष्ठते।'

इति तस्मिन् मन्त्रिमुख्ये अन्यस्मिंश्च जने ध्यायति, सा मृगाङ्कवती तं भूपतिं स्वदेशाऽऽगतं दृष्टा पूर्णसप्ताहा वैद्याधरीं गतिं गन्तुमियेष, परं तदा उत्पतनी विद्या स्मृतौ नाविरासीत्। ततः सा मुषितेवं परं विषादमगमत्।

'कथमेवं विषण्णाऽसि प्रिये! वद' इति राज्ञाऽभिहिता सा विद्याधरी तमब्रवीत्– 'अहं शापमुक्ताऽपि यत् इयच्चिरं त्वत्स्नेहपाशसंयमिता स्थिता,

---

विद्युद् इव क्षणदृश्या = क्षणमात्रं दर्शनीया मया दृष्टा, धात्रा = प्रजापतिना ललाटाक्षरपङ्क्तिषु = ललाटे या अक्षराणां पङ्क्तयः तासु यस्य यत् लिखितं तत् तस्य असम्भाव्यम् अपि अवश्यम् उपतिष्ठते = उपजायते।

इति = एवं तस्मिन्, मन्त्रिमुख्ये = मन्त्रिश्रेष्ठे अन्यस्मिन् च जने ध्यायति विचार्यमाणे, सा मृगाङ्कवती तं भूपतिं स्वदेशागतं दृष्ट्वा पूर्णसप्ताहा = पूर्णः पूरितः सप्ताहो यया सा वैधाधरी गतिं = विद्याधरोचितां गगनमार्गसञ्चारशक्तिं गन्तुम् इयेष = ऐच्छत्, परं तदा उत्पतनीविद्या = ऊर्ध्वगमनसाधनी विद्या स्मृतौ न आविरासीत् = न प्रादुर्बभूव। ततः सा मुषिता = चौरापहृतधना इव परं विषादम् अगमत् = अति दुःखिता अभवत्।

कथं विषण्णासि = दुःखिता असि प्रिये! वद इति राज्ञायशः केतुना अभिहिता = पृष्टा, सा विधाधरी तम् अब्रवीत् – अहं शापमुक्ता अपि यत्

दी थी, ब्रह्मा ने ललाट पर लिखी अक्षरपंक्तियों में जो लिखा है वह असम्भव भी अवश्य सम्भव होता है।

इस प्रकार मन्त्री श्रेष्ठ के और दूसरे लोगों के सोचने पर उस मृङ्गाकवती ने उस राजा को अपने देश आये देख कर सप्ताह पूरा होने पर विद्याधरी गति से जाना चाहा, लेकिन उस समय उड़ने की विद्या उसको याद नहीं आई। तब लुटी हुई के समान वह बहुत दुःखी हुई।

प्रिये! इस प्रकार क्यों दुःखी हो, बताओ ऐसा राजा के द्वारा पूछे जाने पर

तेन मम विद्या दिव्या गतिश्च नष्टा।' तदाकर्ण्य राजा—'ममेयं विद्याधरी सिद्धा' इति प्रहृष्टः महान्तमुत्सवं चकार। तदवलोक्य स दीर्घदर्शी मन्त्री निशि गृहं गत्वा शयनीयं प्राप्य च सहसा हृत्स्फोटेन व्यपद्यत। ततो राजा स्वयं धृतराज्यभारः तया मृगाङ्कवत्या सह चिरं स्वर्गसुखमनुभवन् तस्थौ।'

इति कथामाख्याय स वेतालः पर्य्यपृच्छत् —'राजन्! स्वामिनस्तथा

इयच्चिरम् = एतावत् चिरकालपर्यन्तम् त्वत्स्नेहपाशसंयमिता = त्वयि यः स्नेहः अनुरागः स एव पाशः रज्जुः तेन संयमिता स्थिता, तेन मम विद्याधरी विद्या दिव्यागति = गगनसंचारिणी क्षमता च नष्टा। तदाकर्ण्य = तच्छ्रुत्वा राजा ममेयं विद्याधरी = मृगांकवती, सिद्धा = स्त्रीरूपतां प्राप्तत्वात् वशीभूता इति प्रहृष्टः = प्रसन्नः महान्तम् उत्सवं = आमोदः, चकार = कृतवान्। तद् अवलोक्य स दीर्घदर्शी मन्त्री निशि रात्रौ गृहं गत्वा शयनीयं शय्यां प्राप्य च सहसा = अकस्माद्, हृत्स्फोटेन = हृदयविदारणेन, व्यपद्यत = मृतः। ततः = तत्पश्चात् राजा धृतराज्यभारः = धृतः राज्यभारः येन सः तया मृगांकवत्या सह चिरं स्वर्ग इव सुखम् आनन्दम् अनुभवन् तस्थौ।

इति कथाम् आख्याय = कथयित्वा, स वेतालः पर्यपृच्छत्–राजन्! स्वामिनः = प्रभोः तथा अभ्युदये = दिव्याङ्गनालाभरूपे उत्कर्षे सम्पन्ने = प्राप्ते तस्य

उस विद्याधरी ने उससे कहा—मैं शाप मुक्त होकर भी जो इतने दिन तुम्हारे स्नेह पाश में बंध कर रही, उससे मेरी विद्या और दिव्य गति नष्ट हो गई। यह सुनकर राजा ने कहा—मेरी यह विद्याधरी मृगाङ्कवती स्त्रीरूपता को प्राप्त होकर वश में हो गई। इस प्रकार प्रसन्न होकर उसने बहुत बड़ा उत्सव मनाया।

यह देखकर वह दीर्घदर्शी मन्त्री रात में घर जा कर विस्तर में सोकर सहसा हृदय फट जाने से मर गया। तब राजा ने राज्य का भार स्वयं वहन किया और उस मृगाङ्कवती के साथ स्वर्ग का सुख भोगा।

इस कथा को कह कर उस वेताल ने पूछा राजन्! अपने स्वामी के दिव्य अंगना प्राप्ति रूपी उत्कर्ष के सम्पन्न होने पर महामन्त्री का हृदय फट गया

अभ्युदये सम्पन्ने तस्य महामन्त्रिणः हृदयं यत् स्फुटितं, तस्य को हेतुः? किं दिव्याङ्गना मया नाऽऽप्ता इति शुचा? वा राज्यार्थिनः पुनः राजाऽऽगमनजेन दुःखेन? यदि जानन्नपि एतत् मह्यं न वक्ष्यसि, तदा ते धर्मो विनङ्क्षयति, यास्यति च ते शिरः शतधा खण्डितम्।'

इत्याकर्ण्य राजा तं वेतालम् अवादीत् –'योगीश्वर! नैतत् द्वयमपि शुभचरिते मन्त्रिवरे सम्भवति, किन्तु 'येन भूभुजा स्त्रीमात्रानुरागात् राज्यमुपेक्षितम् अधुना तु दिव्यस्त्रीरक्तस्य तस्य अत्र का वार्त्ता? तन्मे कष्टे कृतेऽपि प्रत्युत दोष एव समधिको जातः' इति विभावयतस्तस्य

महामन्त्रिणः हृदयं यत् स्फुटितं = विदीर्णं, तस्य को हेतुः? किं दिव्याङ्गना मया नाप्ता = न प्राप्ता इति शुचा = शोकेन, वा = अथवा राज्यार्थिनः पुनः राजाऽऽगमन-जेन राज्ञः प्रत्यावर्तन जन्येन दुःखेन कष्टेन? यदि जानन् अपि एतत् मह्यं न वक्ष्यसि, तदा ते धर्मो विनङ्क्ष्यति = विनष्टो भविष्यति। यास्यति च ते शिरः शतधा खण्डितम्।

इत्याकर्ण्य = इति श्रुत्वा, राजा विक्रमसेनः तं वेतालम् अवादीत–योगीश्वर! न एतद् द्वयमपि शुभचरिते = शुभशीले मन्त्रिवरे सम्भवति, किन्तु येन भूभुजा = राज्ञा स्त्रीमात्रे अनुरागात् = आसक्त्या राज्यम् उपेक्षितम्, अधुना तु दिव्यस्त्री रक्तस्य = दिव्याङ्गनायाम् आसक्तस्य तस्य अत्र का वार्ता = राज्य पालने किं वक्तव्यं, तन्मे = तस्माद् मया तीर्थयात्राख्ये कष्टे कृते अपि प्रत्युत दोष एव

इसमें क्या कारण है? क्या दिव्य स्त्री मुझे प्राप्त नहीं हुई–इस शोक से अथवा राज्य की इच्छावाले का राजा (उस मन्त्री) के आगमन के दुःख से हृदय फटा? यदि जानते हुए मुझे यह नहीं बताओगे तो तुम्हारा धर्म नष्ट होगा और सिर सौ टुकड़ों में टूट कर गिर जायेगा।

यह सुनकर राजा ने बेताल से कहा – हे योगीश्वर! ये दोनों कारण शुभ चरित्र वाले श्रेष्ठ मन्त्री में नहीं हो संकते। किन्तु जिस राजा ने स्त्रियों में आसक्त हो कर राज्य की उपेक्षा की आज दिव्य स्त्री में अनुरक्त उसकी अब बात ही क्या है? तब मैं तीर्थयात्रा का कष्ट करने पर भी कुछ सुधार न कर पाया

मन्त्रिणो हृदयं स्फुटितमिति मन्ये।'

इत्यभिहितो वेतालः स मायी तत्क्षणात् निजमेव निलयं जगाम। राजाऽपि तमवाप्तुं पुनरुद्यतः तमेव शिंशपातरुमाससाद।

समधिको जातः। इति विभावयतः = चिन्तयतः तस्य मन्त्रिणो हृदयं स्फुटितं = विदीर्णमति मन्ये।

इत्यभिहितो स मायी = माया अद्भुतकर्म अस्यास्तीति तादृशः वेतालः तत्क्षणात् निजमेव निलयं = वासस्थानं जगाम। राजा अपि तम् अवाप्तुं पुनरुद्यतः = प्रवृत्तः तमेव शिंशपातरुम् आससाद = प्राप।

अपितु दोष ही आधिक हो गया – ऐसा सोचते हुए मन्त्री का हृदय फट गया– ऐसा में समझता हूँ।

ऐसा कहने पर वह मायावी बेताल उसी वक्त अपने स्थान पर चला गया। राजा भी उसे प्राप्त करने के लिए फिर प्रवृत्त होकर उस सेंमर के पेड़ के पास पहुँचा।

हरिस्वामिविप्रभार्योपाख्यानम्

अथ राजा पुनः शिंशपामूलं गत्वा तं बेतालं स्कन्धमारोप्य पूर्ववत् प्रातिष्ठत। गच्छन्तं च पुनर्वेतालः प्राब्रवीत् –'राजन्! शृणु सङ्क्षिप्तामेकां कथाम् –

अस्ति वाराणसी नाम पुरी। तत्र देवस्वामीति राजमान्यो द्विजः कश्चित् प्रतिवसति स्म। तस्य महाधनस्य हरिस्वामीति सुतोऽभवत्। तस्य लावण्यवती नाम उत्तमा पत्नी आसीत्, यां तिलोत्तमादिसुराङ्गना-निर्माणेन शिक्षितकौशलौ विधिरनर्घरूपलावण्यैर्विनिर्ममे।

अथ = अनन्तरं राजा पुनः शिंशपामूलं गत्वा तं वेतालं स्कन्धम् आरोप्य पूर्ववत् प्रातिष्ठत् = गन्तुमारेभे। गच्छन्तं च पुनः वेतालः प्राब्रवीत् = अकथयत् राजन्! श्रृणु संक्षिप्ताम् एकां कथाम्–

अस्ति वाराणसी नाम पुरी नगरी। तत्र देवस्वामीति राजमान्यो द्विजः कश्चित् प्रतिवसति स्म। तस्य महाधनस्य = धनिकस्य हरिस्वामी इति सुतः = पुत्रः, अभवत्। तस्य लावण्यवती नाम उत्तमा पत्नी आसीत्, यां तिलोत्तमादिसुराङ्गना-निर्माणेन = तिलोत्तमायाः याः सुराङ्गनाः देवाङ्गना अप्सरसः तासां निर्माणेन = रचनया शिक्षितकौशलो = लब्धनैपुण्यो, विधिः = अनर्घरूपलावण्यैः नास्ति अर्थः मूल्यं यस्य तादृशं रूपम् आकृतिः लावण्यादि सौन्दर्यविशेषाः, तैः विनिर्ममे = ससर्ज।

इसके बाद राजा ने फिर उसी शीशम के पेड़ के नीचे जा कर उस बेताल को कंधे पर चढ़ा कर पहले ती तरह जाना आरम्भ किया। जाते हुए से बेताल फिर बोला – राजन्! एक छोटी कथा सुनो –

वाराणसी नाम की एक नगरी हैं, उसमें एक देवस्वामी नाम का राजा के द्वारा सम्मानित कोई ब्राह्मण रहता था। उस महाधनी का पुत्र हरिस्वामी था, उसकी लावण्यवती नाम की उत्तम पत्नी थी, जिसे तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के निर्माण कौशल से सम्पन्न ब्रह्मा ने अनुपम आकृति तथा सौन्दर्य से बनाया।

कदाचित् स हरिस्वामी तया कान्तया चन्द्रांशुशीतले हर्म्ये श्रान्तो निद्रां ययौ। तस्मिंश्च काले कामचारी मदनवेगो नाम विद्याधरकुमारः तेन पथा नभसि सञ्चरन् तत्र समायात्, अपश्यश्च तां लावण्यवतीं पत्युः पार्श्वे सुप्ताम्। स तु दृष्ट्वैव तां सुप्तामेव गृहीत्वा नभोमार्गेण प्रायात्।

क्षणेन च प्रबुद्धो हरिस्वामी तां प्राणेश्वरीमपश्यन् ससम्भ्रमं शयनादुदतिष्ठत्-'अहो! सा मम कान्ता क्व गता? कुपिता किं मयि? आहोस्वित् प्रच्छन्ना मच्चितं जिज्ञासुः कापि स्थिता परिहसति?' इत्येवं

कदाचित् = एकदा स हरिस्वामी तया कान्तया चन्द्रांशुशीतले = चन्द्रकिरण शीतले, हर्म्ये = वासभवने, श्रान्तो = निद्रां ययौ। तस्मिन् च काले कामचारी = स्वेच्छाचारी मदनवेगो नाम विद्याधरकुमारः तेन पथा = मार्गेण नभसि, सञ्चरन् = भ्रमन् तत्र समायात् = आगतवान्। अपश्यत् च तां लावण्यवतीं पत्युः पार्श्वे सुप्ताम्। स तु = विद्याधरकुमारं दृष्ट्वा एव तां सुप्तामेव = शयानामेव, गृहीत्वा = आदाय, नभोमार्गेण = आकाशपथा, प्रायात् = अगच्छत्।

क्षणेन च = क्षिप्रं प्रबुद्धो जागरितः हरिस्वामी तां प्राणेश्वरीं = प्रियाम् अपश्यन् ससम्भ्रमं =सोद्वेगं शयनाद् उदतिष्ठत्-अहो! सा मम कान्ता क्व गता? कुपिता किं मयि? आहोस्वित् = अथवा, प्रच्छन्ना = गुप्ता मच्चित्तं जिज्ञासुः क्वापि स्थिता परिहसति इत्येवं बहु वितर्कयन् व्याकुलः समन्तात् हर्म्यप्रासाद-

---

एक बार हरिस्वामी अपनी प्रिया के साथ चन्द्रिका से शीतल वास भवन में थक कर सो गया था। उस समय स्वेच्छाचारी मदनवेग नाम का विद्याधर कुमार उसी मार्ग से आकाश में घूमता हुआ वहां आया। उसने पति की पास सोई हुई उस लावण्यवतीको देखा। देख कर उसने सोई हुई उसको उठाया और आकाश मार्ग से चला गया।

शीघ्र ही जागा हुआ हरिस्वामी प्रिया को न देख कर घबड़ा कर शय्या से उठ गया। हाय! मेरी कान्ता कहां गयी, मुझपर क्रोधित हो गयी अथवा छिप कर मेरे हृदय को जानने की इच्छुक कहीं बैठी हंस रही है—इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए व्याकुल होकर चारों ओर वास भवन, देव मन्दिर, ऊपर के

बहु वितर्कयन् व्याकुलः समन्तात् हर्म्यप्रासादवलभीषु अन्विष्यन् निशि अभ्रमत्, परम् आगृहोद्यानात् सर्वत्र चिन्वन् कुतोऽपि तां न प्राप।

ततः शोकाग्निसन्तप्तः स सगद्गदं विललाप-'हा चन्द्रमुखि! हा ज्योत्स्नानासिताङ्गि ! हा प्रिये ! लावण्यवति! रात्र्या तुल्यगुणद्वेषात् अनया किं न सोढाऽसि? त्वया कान्त्या जितो योऽयं चन्द्रः चन्दनशीतलैः करैः मामसुखयत्, सोऽयं त्वया विना लब्धान्तर इव तैरेव ज्वलद्भिरङ्गारैरिव

वलभीषु = हर्म्यं वासभवनं, प्रासादो देवगृहादि वलभी गृहोपरिभागः तेषु अन्विष्यन् निशि रात्रौ अभ्रमत्, परम् आगृहोद्यानात् हर्म्यम् आरभ्य गृहोद्यानपर्यन्तं सर्वेषु स्थानेषु सर्वत्र चिन्वन् कुतोऽपि तां न प्राप।

ततः = तदनन्तरं, शोकाग्निसंतप्तः = शोको विरहजन्यः सन्तापः एव अग्निः तेन सन्तप्तः पीडितः स सगद्गदं = वाष्पपूर्णकण्ठतया अस्फुटाक्षरं विललाप–हा चन्द्रमुखि = चन्द्र इव सुन्दरं मुखं यस्या सा, तत्सम्बोधने, हा ज्योत्स्नासिताङ्गि = ज्योत्स्ना चन्द्रिका तद्वत् सितम् = उज्ज्वलम् अङ्गं यस्या सा तत्सम्बोधने, हा प्रिये लावण्यवति। अनया रात्र्या = निशया तुल्यगुणद्वेषात् किम् न सोढ़ाऽसि। अयमभिप्रायः–चन्द्रतुल्यमुखतया, चन्द्रिकाधवल शरीरतया च समानगुणजनितया ईर्ष्यया इव अनया रात्र्या त्वं न सोढा क्षान्ताऽसीति भावः। त्वया कान्त्या सौन्दर्येण जितो योऽयं चन्द्रः चन्दन शीतलैः = चन्दनरसस्पर्शः तत् शीतलैः, करैः = किरणैः माम् असुखयत् = आनन्दयामास, सोऽयं त्वया

बरामदे आदि स्थानों में खोजता हुआ रात में घूमा; लेकिन कोठी से ले कर बाहर के बगीचे तक सब जगह खोजता हुआ उसे कहीं भी प्राप्त नहीं किया।

अनन्तर शोक रूपी अग्नि में संतप्त भरे हुए गले से उसने विलाप किया- हाय चन्द्र के समान मुख वाली, चन्द्रिका के समान अंगों वाली प्रिये लावण्यवती रात्रि ने समान गुण की ईर्ष्या से तुम्हें सहन नहीं किया (अर्थात् जिस प्रकार रात में चन्द्रमा का उदय होता है और चारों ओर चन्द्रिका की उजास फैल जातीहै वैसे ही तुम्हारा सौन्दर्य तुम्हारे शरीर में विद्यमान है यह भाव है।) तुम्हारे सौन्दर्य से जीता गया यह चन्द्रमा पहले चन्दन के समान ठण्डक देने वाली किरणों से

विषदिग्धैराशुगैरिव मां तुदति।' इत्येवं विलपतस्तस्य हरिस्वामिनः सा निशा कृच्छ्रेण व्यरंसीत्, न तु विरहव्यथा।

अथ प्रातः भास्वान् करैः विश्वस्य सन्तमसं विभेद, परं तस्य हरिस्वामिनो मोहान्धतमसं न भेत्तुं चक्षमे। तीर्णनिशैश्चक्राह्वैरिव वितीर्णस्तस्य करुणाऽऽक्रन्दितध्वनिः शतगुणत्वं भेजे। स स्वजनैः सान्त्व्यमानोऽपि वियोगानलदीपितः तां प्रेयसीं विना धृतिं न लेभे;

विना तव = विरहेण, लब्धान्तरः = प्राप्तावसर इव तैः एव ज्वलद्भिः अङ्गारैः इव विषदिग्धैः = विषलिप्तमुखैः आशुगैरिव मां तुदति = पीडयति इत्येवं विलपतः = रुदतः तस्य हरिस्वामिनः सा निशा कृच्छ्रेण = कष्टेन, व्यरंसीत् = अपागमत्। न तु विरहव्यथा = विरहपीडातु न व्यरंसीद् इति भावः।

अथ प्रातः भास्वान् = सूर्यः, करैः = किरणैः विश्वस्य सन्तमसं = विष्वग् वर्तिनम् अन्धकारं, बिभेद = अनाशयत्, परं तस्य हरिस्वामिनः मोहान्धतमसं = मोहो अविद्या ममत्वरूपा आसक्तिः एव अन्धतमः गाढान्धकार एव अन्धतमसं भेत्तुं = दूरीकर्तुं न चक्षमे = न समर्थो बभूव। तीर्णनिशैः = तीर्णा अतिवाहिता निशा रात्रि यैः चक्राह्वैः चक्रवाकपक्षिभिः इव वितीर्णः = विस्तृतः तस्य करुणा क्रन्दित ध्वनिः = करुणो दीनः चासौ आक्रन्दितध्वनिः = क्रन्दनशब्दः, शतगुणत्वं भेजे = शतधा विस्तृतोऽभवत्। स स्वजनैः सान्त्वयमानोऽपि = प्रबोध्यमानः

मुझे सुख प्रदान करता था, वही आज तुम्हारे विना अवसर प्राप्त करके उन्हीं किरणों से जलते हुए अंगारों से विष में बुझे हुए बाणों के समान मुझे पीडित कर रहा है - इस प्रकार विलाप करते हुए उस हरिस्वामी की रात बड़ी कष्ट से बीती, किन्तु विरह व्यथा शान्त नहीं हुई।

प्रातः काल सूर्य ने अपनी किरणों से संसार के अन्धकार को नष्ट कर दिया, लेकिन वह उस हरिस्वामी के मोह रूपी अन्धकार को नष्ट नहीं कर सका। रात बिताने वाले चकवा पक्षी के समान उसके करुणा जनक रोने के शब्द सौ गुने बढ़ गये। अपने बन्धु बान्धवों के द्वारा समझाये जाने पर भी वियोग की आग में जलता हुआ वह उस प्रेयसी के विना धैर्य नहीं पा सका। यहां वह रहती

'इहानया स्थितम्, इह स्नातम्, इह प्रसाधनं कृतम्, इह च विहृतम्' इति इतस्ततः रुरोद।

बन्धवः सुहृदश्च तमेवं प्राबोधयन् - 'न तावत् सा मृता, कथं वा त्वया आत्मा हन्यते? तदवश्यं तामवाप्तासि, धैर्य्यमवलम्बस्व, तां गवेषय च, धीरस्य उद्योगिनोऽप्राप्यमिह नास्ति' इति। इत्येवं बोधितः स हरिस्वामी कृच्छ्रेण कैश्चित् दिनैः धृतिं बबन्ध, अचिन्तयच्च-'सर्वस्वं ब्राह्मणसात् कृत्वा तीर्थानि तावत् भ्रमामि, पापसञ्चयञ्च क्षपयामि,

---

अपि वियोगानलदीपितः = विरहाग्निना प्रज्वलितः तां प्रेयसीं विना धृतिं = धैर्य न लेभे = लब्धवान्, इह अनया स्थितम्, इह स्नातम्, इह प्रसाधनं = अलंकरणं कृतम्, इह च विहृतम् = क्रीडितम् इति इतः ततः रुरोद = विललाप।

बन्धवः सुहृदश्च = ज्ञातयः मित्राणि च तम् = हरिस्वामिनं प्राबोधयन्-न तावत् सा मृता = परित्यक्तदेहा, कथं वा त्वया आत्मा हन्यते = पीड्यते, तद् अवश्यं ताम् अवाप्तासि = आप्स्यसि, धैर्यम् अवलम्बस्व = धारय, तां गवेषय = अन्वेषय, धीरस्य = विवेकिनः उद्योगिनः प्रयासरतस्य इह = संसारे अप्राप्यं नास्ति, इत्येवं बोधितः = आश्वासितः स हरिस्वामी कृच्छ्रेण = कष्टेन कैश्चिद् दिनैः धृतिं = धैर्यं, बबन्ध = धृतवान्, आचिन्तयत् च सर्वस्वं = सर्वं निजं धनादिकं ब्राह्मणसात् = ब्राह्मणेभ्यो देयं कृत्वा तीर्थानि तावद् भ्रमामि = चरामि, पापसञ्चयं च क्षपयामि = नाशयामि, पापक्षये = पापे नष्टे जाते जातु तां प्रियां

थी, यहां स्नान करतीथी, यहां शरीर के सजाती थी, यहां खेलती थी, विहार करती थी, यह कहता हुआ इधर-उधर रोने लगा।

रात के बीतने पर बन्धुओं और मित्रों ने उसे इस प्रकार समझाया—वह मरी तो नहीं है, तुम अपने को इस प्रकार पीड़ा दे रहे हो, तुम उसको अवश्य प्राप्त करोगे, धैर्य धारण करो, उसको खोजो, विवेकी और प्रयत्नवान् व्यक्ति के लिये इस संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है – इस प्रकार समझाया गया वह हरि स्वामी बड़े कष्ट से कुछ दिन तक धैर्य धारण करता रहा, और उसने सोचा— सब कुछ ब्राह्मणों को दे कर तीर्थों में घूमता हूँ, पाप सञ्चय को नष्ट करता

पापक्षये जाते जातु तां प्रियां भ्राम्यन्नवाप्नुयाम्' इत्यालोच्य स समुत्थाय स्नानादिकमकरोत् ।

अन्येद्युश्च सत्रे विविधान्नपानानि कृत्वा अवारितं द्विजन्मनामभ्यवहारमकारयत, धनानि च तेभ्यः सर्वाणि प्रादात्। ब्रह्मण्यमात्रवित्तश्च स्वदेशान्निर्गत्य प्रियां प्राप्तुं तीर्थानि भ्रमितुमगात्।

भ्राम्यतश्च तस्य भीमो ग्रीष्मर्तुकेशरी प्रचण्डादित्यवदनो दीप्ततद्रश्मिकेशरः समाजगाम। समीरणश्च प्रियाविरहसन्तप्तानां पान्थानां निःश्वासमारुतैः न्यस्तोष्मा इव अत्युष्णो वहति स्म। जलाशयाश्च

भ्राम्यन् अवाप्नुयाम्। इत्यालोच्य स समुत्थाय स्नानादिकम् अकरोत्।

अन्येद्युः = अपरेऽहनि, सत्रे = सदाव्रतरूपे यज्ञे, विविधान्नपानानि = विविधप्रकारकाणि अन्नानि पानानि कृत्वा = प्रस्तूय अवारितम् = अनिषिद्धं, द्विजन्मनां = ब्राह्मणानाम्, अभ्यवहारं = भोजनम् अकारयत्। धनानि च तेभ्यः सर्वाणि प्रादात् = ददौ, ब्रह्मण्यमात्रवित्तः = ब्रह्मणोभावः कर्म च ब्रह्मण्यं तन्मात्रं वित्तं धनं यस्य सः स्वदेशाद् निर्गत्य प्रियां प्राप्तुं तीर्थानि भ्रमितुम् अगात्।

भ्राम्यतश्च = चरतः तस्य भीमो = भयंकरः, ग्रीष्मर्तुकेशरी = ग्रीष्मकाल एव केसरी इति रूपकं प्रचण्डादित्यवदनो = प्रचण्डः तीक्ष्णः आदित्यः सूर्य एव वदनं मुखं यस्य, दीप्ततद्ररश्मिकेशरः = दीप्ता उज्ज्वला तस्य सूर्यस्य रश्मयः किरणा एव केशरः जटाः यस्य सः समाजगाम। ग्रीष्मकालः आगत इति भावः।

हूं, पापों के नष्ट हो जाने पर शायद घूमते-घूमते प्रिया को पा जाऊं – यह सोच कर उठ कर उसने स्नानादि किया।

उसने दूसरे दिन विविध प्रकारके अन्न और पान को बनवाकर विना रोक-टोक के ब्राह्मणों को भोजन कराया, सभी धन उनको दे दिया। ब्राह्मण के धर्म मात्र को धन मान कर अपने देश से निकल कर तीर्थ भ्रमण के लिये चला गया।

उसके घूमते-घूमते प्रखर सूर्य रूपी मुख वाला दीप्त किरण रूपी केशर अर्थात् जटा वाला ग्रीष्म ऋतु रूपी सिंह आ पहुँचा। उस समय वायु प्रिया के वियोग से पीडित पथिकों के निःश्वास से निकली गरमी से बहुत गरम हवा

शुष्यद्विपाण्डुपङ्काः धर्मलुप्ताम्बुसम्पदः स्फुटितहृदया इव दृश्यन्ते स्म। पादपाश्च पक्षिणां चीत्कारमुखरास्तापम्लान दलाधराः मधुश्रीविरहिण इव समदृश्यन्त।

तस्मिंश्च काले अर्कतापेन कान्तावियोगेन क्षुधया तृषया अध्वश्रमेण चातीव क्लान्तो हरिस्वामी भोजनार्थी भ्रमन् कञ्चित् ग्राममाससाद। तत्र च पद्मनाभनाम्नः विप्रस्य गृहे बहून् विप्रान् भुञ्जानान् दृष्ट्वा द्वारशाखां

समीरणश्च = वायुरपि, प्रियाविरहसन्तप्तानां = प्रियायाः कान्तायाः विरहेण वियोगेन सन्तप्तानां पीडितानां पान्थानां = पथिकानां, निःश्वासमारुतैः = निःश्वासपवनैः, न्यस्तोष्मा न्यस्तो निक्षिप्तः ऊष्मा सन्तापः यस्मिन् सः, इव अत्युष्णो अतीव दाहको वहति स्म = प्रवाति स्म, जलाशयाः = सरोवराः च शुष्यद् विपाण्डु पङ्काः = आतपवशेन विपाण्डु-धूसरः पङ्क येषां, धर्मलुप्ताम्बुसम्पदः = धर्मेन आतपेन लुप्ताः शुष्काः अम्बूनि जलानि एव सम्पदो येषां ते स्फुटितहृदया इव भग्नवक्षस्थला इव दृश्यन्ते स्म। पादपाश्च पक्षिणां = खगानां, चीत्कारेण मुखराः = सशब्दाः पिपासाऽऽहारादिक्लेशेन खगैः क्रियमाणेन तारस्वरेण शब्दायिता इति भावः, तापम्लानदलाधराः तापेन ग्लानाः शुष्काः दलानि पर्णानि एव अधरा अधरोष्ठ भागाः येषां ते। मधुश्रीः = मधुमासलक्ष्मीः सैव काचित् स्त्री तया विरहिणः = वियुक्ता इव समदृश्यन्त।

तस्मिन् च काले अर्कतापेन = सूर्यातपेन कान्तावियोगेन क्षुधया तृषया अध्वश्रमेण = मार्गभ्रमणजन्य क्लेशेन च अतीव क्लान्तो = मलिनः हरिस्वामी भोजनार्थी भ्रमन् कञ्चिद् ग्रामम् आससाद = प्राप। तत्र च पद्मनाभनाम्नः विप्रस्य

अर्थात् लू बह रही थी। सरोवर सूखने से धूसर कीचड़ वाले, घाम के कारण सूख गयी है जल सम्पदा जिनकी; फटे हृदय जैसे दिखाई दे रहे थे, पेड़ पक्षियों को खाने-पीने को कुछ न मिलने के कारण उनके चीत्कार से मुखरित थे, ताप से उनके पत्ते मलिन हो गये थे। वहां मधुमास की शोभा से रहित दिखाई दे रहे थे।

उस समय सूर्य के ताप से, कान्ता के वियोग से भूख प्यास से और रास्ते की थकावट से अत्यन्त थका मादा हरिस्वामी भोजन के लिए घूमता हुआ किसी गांव में पहुंचा।

समालम्ब्य निःशब्दनिश्चलस्तस्थौ।

तथा स्थितं तमालोक्य तस्य याज्ञिकस्य विप्रस्य गृहिणी साध्वी सञ्जातदया व्यचिन्तयत्–'अहो ! क्षुत् नाम गुर्वी कस्य लाघवं न कुर्य्यात्? यदेष कोऽपि अन्नार्थी द्वारि अधोमुखस्तिष्ठति, दृश्यते चासौ दूरादभ्यागत इव म्लानः क्षीणेन्द्रियः; तदेषोऽन्नदानपात्रम्' इत्यवधार्य्य सा साध्वी परमान्नभृतं सघृतशर्करं पात्रमुत्क्षिप्य पाणिभ्यामानीय प्रश्रयवती तस्मै

= ब्राह्मणस्य गृहे बहून विप्रान् भुञ्जानान् = अश्नतः दृष्ट्वा द्वारशाखां, समालब्य निःशब्दः निश्चलः तस्थौ = द्वारस्य एकं भागम् अश्रित्य मौनः अक्रियः स्थितोऽभूत्।

तथा स्थितं तम् आलोक्य तस्य याज्ञिकस्य विप्रस्य = यज्ञकर्तुः ब्राह्मणस्य गृहिणी साध्वी सञ्जातदया = जनितकारुण्या व्यचिन्तयत्–अहो ! क्षुत् = बुभुक्षानाम गुर्वी = अधिका कस्य लाघवं न कुर्य्यात्? यदेष कोऽपि अन्नार्थी द्वारि अधोमुखः तिष्ठति, दृश्यते च असौ दूराद् अभ्यागत इव म्लानः = मलिनः, क्षीणेन्द्रियः = दुर्बलाङ्गः, तद् एष अन्नदानपात्रम्, इत्यवधार्य = मनसि विधाय सा साध्वी = पतिव्रता, परमान्नभृतं = परमान्नेन पायसेन भृतं पूरितं सघृतशर्करं = घृतेन शर्करया च युक्तं पात्रं = भाजनम्, उत्क्षिप्य = उत्थाप्य पाणिभ्याम् आनीय प्रश्रयवती = सविनयं तस्मै ददौ, जगाद च एनं–भुङ्क्ष्व इह क्वचिद् वापी तटे

वहां पद्मनाभ नाम के किसी ब्राह्मण के घर बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करते हुए देख कर दरवाजे की चौखट का सहारा ले कर विना कुछ बोले, विना कुछ हिले-डुले खड़ा रहा।

उस प्रकार खड़े उसे देख कर उस यज्ञकर्ता की पत्नी ब्राह्मण की गृहिणी जो साध्वी अर्थात् सज्जन थी दया युक्त होकर सोचने लगी – अहो भूख जैसी बड़ी चीज किसको छोटा नहीं बनाती, जो यह अन्न का इच्छुक व्यक्ति नीचे मुख करके दरवाजे पर खड़ा है, यह दूर से आया हुआ, मलिन मुख वाला, दुर्बल इन्द्रियों वाला लगता है अतः यह अन्न दान का पात्र है अर्थात् इसे अन्न अवश्य देना चाहिये – ऐसा सोच कर उस साध्वी ने खीर से भरा हुआ घी और चीनी मिला हुआ वर्तन उठाकर हाथों से ला कर स्नेह से उसको दे दिया और उससे

ददौ, जगाद च एनं-'भुङ्क्ष्व इह क्वचित् वापीतटे गत्वा।'

सोऽपि 'तथा' इति तदन्नपात्रं गृहीत्वा नातिदूरतो गत्वा क्वापि वापीतटे वटतरोरधः स्थापितवान्।

ततः स तत्र वाप्यां पाणिपादं प्रक्षाल्य आचम्य च यावत् भक्षयितुं सहर्षः परमान्नमुपैति, तावत् कश्चित् श्येनः कुतश्चित् चञ्च्वा पादद्वयेन च एकं कृष्णसर्पं गृहीत्वा तस्मिन् तरावुपाविशत् । तेन पक्षिणा आक्रम्य उह्यमानस्य उत्क्रान्तजीवितस्य तस्य सर्पस्य आस्यात् विषलाला विनिर्ययौ सा अधःस्थिते तस्मिन्नन्नपात्रे तदाऽपतत्। हरिस्वामी तु तददृष्ट्वा क्षुधार्त्तः आगत्यैव तत् सर्वं भुक्तवान्।

गत्वा। सोऽपि तथा इति तद् अन्नपात्रं गृहीत्वा नातिदूरतः = निकटे एव गत्वा क्वापि वापी तटे वटतरोरधः स्थापितवान्।

ततः = अनन्तरं च तत्र वाप्यां पाणिपादं = हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य आचम्य च यावत् भक्षयितुं सहर्षं परमान्नं = पायसम्, उपैति = समीपं याति, तावत् = तदागमनात् पूर्वमेव कश्चित् श्येनः = पक्षी नाम पक्षि विशेषः कुतश्चित् चञ्च्वा पादद्वयेन च एकं कृष्णसर्पं गृहीत्वा तस्मिन् तरौ उपाविशत्, तेन पक्षिणा आक्रम्य बलपूर्वकम् अधिष्ठाय उह्यमानस्य = नीयमानस्य, उत्क्रान्तजीवितस्य = अपगत-प्राणस्य, आस्यात् = वदनात् विषलाला विषयुक्ता लाला =मुखजलस्यन्दः विनिर्ययौ, सा अधिस्थते तस्मिन् अन्नपात्रे तदा आपतत्। हरिस्वामी तु तद् अदृष्ट्वा = अनवलोक्य, क्षुधार्तः = बुभुक्षुः आगत्य एव तत् सर्वं भुक्तवान् = जघास।

कहा – 'इसे किसी ताल तलैया के किनारे जा कर खा लो।'

उसने भी 'ठीक है' – ऐसा कह कर उस अन्न के पात्र को ले कर पास ही तलैया के किनारे वट वृक्ष के नीचे रख दिया। वह वहां उस तलैया में हाथ पैर धो कर आचमन करके जब तक खुश होकर वह खीर खाने के लिए उसके पास आया, तब तक एक बाज कहीं से चोंच में और दोनों पञ्जों में रख कालासर्प ले कर उस वृक्ष के ऊपर बैठ गया। उस पक्षी के द्वारा जबरदस्ती दबाकर पकड़े गये और ले जाये जाते हुए उस मरते सांप के मुख से विष से मिश्रित लार उस अन्न पात्र में गिर पड़ी। हरिस्वामी ने यह सब नहीं देखा, अतः भूख से व्याकुल होकर वह सब खीर खा ली।

अथ तस्य भुक्तवत एव तीव्रा विषज्वाला प्रादुरभवत्। 'अहो! विधौ विपर्यस्ते किमिव न विपर्येति? तत् सक्षीरघृतशर्करम् अन्नं मे विषीभूतम्' इति जल्पन् हरिस्वामी परिस्खलन् तां सत्रिणस्तस्य विप्रस्य गेहिनीं गत्वा प्राब्रवीत् - 'ब्रह्मणि ! त्वद्दत्तात् अन्नात् मे विषं जातं, तत् क्षिप्रं कञ्चित् विषमन्त्रिणम् आनय, नो चेत् तव ब्रह्महत्या भविता।' इत्याकर्ण्य सा साध्वी 'किमेतत्' इति विह्वला, यावत् विषमन्त्रिणमानयितुं चेष्टते स्म, तावत् स हरिस्वामी परावृत्तनेत्रः प्राणैर्व्ययुज्यत।

अनन्तरं तस्य हरिस्वामिनः, भुक्तवतः एव तीव्रा विषज्वाला = विषपान-जनितो दाहः, प्रादुरभवत् = प्रारब्धः। अहो = हन्त, विधौ = भाग्ये, विपर्यस्ते = विपरीते किम् इव न विपर्य्येति = न प्रतिकूलताम् एति। तत् सक्षीरघृतशर्करम् = क्षीरेण घृतेन शर्करया च मिश्रितं अन्नं मे विषीभूतम्, यद् अविषम्, आसीत् तदेव विषीभूतम् अभूत् तद्भावे च्विः। इति जल्पन् = कथयन्, हरिस्वामी परिस्खलन् = पतत्प्रायगतिः तां सत्रिणे = याज्ञिकस्य विप्रस्य ब्राह्मणस्य, गेहिनीं = गृहिणीं गत्वा प्राब्रवीत् = अवदत्–ब्राह्मणि। त्वया दत्ताद् अन्नाद् मे विषं जातम्। तत् क्षिप्रं शीघ्रं, कञ्चित् विषमन्त्रिणं = विषनिवारणसमर्थं वैद्यम् आनय, नो चेत् तव ब्रह्महत्या भविता। इत्याकर्ण्य सा साध्वी किमेतद् इति विह्वला, यावत् विषमन्त्रिणम् आनेतुं चेष्टते स्म। तावत् स हरिस्वामी परावृतनेत्रः उत्क्रान्त-नयनः प्राणैर्व्ययुज्यत = मृत इत्यर्थः।

अनन्तर खाते ही एक तीव्र विष ज्वाला उठने लगी। अहो! भाग्य के विपरीत होने पर क्या उल्टा नहीं होता? इसीलिए दूध घी और चीनी मिली हुई खीर भी मेरे लिए विष हो गयी।

यह कहता हुआ गिरता पड़ता हरिस्वामी उस याज्ञिक ब्राह्मण के घर जाकर उसकी गृहिणी से बोला—ब्राह्मणी! तुम्हारा दिया अन्न मुझे विष हो गया, इसलिए शीघ्र जाकर विष उतारने वाले मन्त्रिक को बुला लाओ, यदि ऐसा नहीं होगा तो तुम्हें ब्रह्म हत्या लग जायेगी। यह सुनकर वह साध्वी यह क्या हुआ इस प्रकार विह्वल होकर जब तक विष उतारने बाले वैद्य को लाने का प्रयास कर ही रही थी, तब तक वह हरिस्वामी आंखों को उलटता हुआ मर गया।

ततः सा निर्दोषाऽपि आतिथेयी अपि सत्रिणा तेन विप्रेण मिथ्याऽतिथि-वधजनितकोपेन भार्या निष्कासिता, शुभादपि कर्मणः समुत्पन्नमृषापवादा जातावमाना च तपसे तीर्थमशिश्रियत्।'

इति कथामाख्याय वेतालः पृच्छति स्म—'राजन्! एषां सर्पश्येनान्नदातृणां मध्ये कस्य विप्रवधोऽभूत् ? अस्य वादो धर्मराजसकाशे अपि अभवत्, परं न कोऽपि निर्णयः समजनि। तत् राजेन्द्र! त्वमेव

ततः सा निर्दोषा अपि आतिथेयी = अतिथि सेवा परायणा स्त्री तेन सत्रिणा = याज्ञिकेन, विप्रेण = ब्राह्मणेन मिथ्याऽतिथिवधजनितकोपेन मिथ्या यो अतिथिवधः तेन जनितः यः कोपः तेन (अतिथि वधः, न कृतः तथापि त्वया कृतः इति मिथ्या प्रलाप इति यावत्) सा भार्या निष्कासिता = गृहान्निर्वासिता। शुभाद् अपि कर्मणः = बुभुक्षवे अन्नदानादिरूपस्य शुभकार्यस्य समुत्पन्नमृषापवादा = समुत्पन्नो, मृषाऽपवादो = निन्दा यस्या सा जातावमाना = अपमानिता च तपसे तीर्थम् अशिश्रियत् = तपश्चरणाय तीर्थस्थानं असेविष्ट।

इति कथामाख्याय = कथयित्वा वेतालः पृच्छति स्म—राजन् एषां सर्पश्येनान्नदातृणां मध्ये कस्य विप्रवधः = हरिस्वामिनः हत्या अभूत्? अस्य वादः धर्मराजसकाशे = यमराजस्य न्यायालये अपि अभवत्, परं न कोऽपि निर्णयः समजनि = अजायत। तद् राजेन्द्र = राजसु श्रेष्ठ ! त्वमेव ब्रूहि कस्य ब्रह्महत्या जाता?

तव वह निर्दोष अतिथिसत्कार परायण स्त्री उस याज्ञिक ब्राह्मण के अतिथि बध रूपी मिथ्या अभियोग लगने पर क्रोध से घर से निकाल दी गयी। शुभ काम करने पर भी झूठे आरोप के मढ़े जाने पर अपमानित वह नारी तप करने के लिए किसी तीर्थ स्थान में चली गई।

इस कथा को कह कर बेताल ने पूछा – राजन्! सांप बाज और अन्नदाता के बीच में ब्राह्मण का बध किसने किया। ब्रह्महत्या किसको लगी? इस पर विचार यमराज के न्यायालय में भी किया गया, किन्तु कोई निर्णय नहीं हो पाया। इस लिए हे राजाओं में श्रेष्ठ ! तुम्हीं बताओ, किसको ब्रह्महत्या लगी। यदि जानते हुए भी झूठ बोलोगे तो वही शाप तुम्हारे लिए याद करने योग्य है-

ब्रूहि, कस्य ब्रह्महत्या जाता? मिथ्या ब्रुवतो जानतस्ते स एव शापः स्मर्त्तव्य' इति।

तदाकर्ण्य राजा समुज्झितमौनस्तं वेतालमब्रवीत् –'कस्य तत् पातकम् ? सर्पस्य तावदवशस्य शत्रुणा भक्ष्यमाणस्य कोऽत्रापराधः? श्येनेनापि क्षुधितात्मना न किमपि दृष्टं, तत्तस्यापि नात्रापराधः। अकस्मात् प्राप्तमतिथिं भक्ष्येण भोजयतोर्दम्पत्योरपि द्वयोर्वाऽन्यतरस्य वा कथं दोषः? यतस्तौ धर्मैकप्रवत्तौ नेमपराधमर्हतः। अहं तावत् तस्यैव सा

मिथ्या ब्रुवतो जानतः = ज्ञाता सन् अपि मिथ्याकथनात् स एव शापः = शिरसः शतधा खण्डनं, स्मर्तव्यः = स्मरणीयम्।

तदाकर्ण्य राजा समुज्झितमौनः = त्यक्तमौनः तं वेतालम् अब्रवीत्–कस्य तत् पातकम् = पापः। सर्पस्य = भुजङ्गस्य तावद् अवशस्य = पराधीनस्य शत्रुणा भक्ष्यमाणस्य कोऽत्र अपराधः? नैव अपराध इति भावः। श्येनेन अपि क्षुधितात्मना न किमपि दृष्टं, तत्तस्यापि तस्मात् तस्य = पक्षिणः अपि न अत्र = विषवधरूपो अपराधः, अकस्मात् प्राप्तम् अतिथिम् = अभ्यागतं भक्ष्येण भोजयतः दम्पत्योः = जायापत्योः, द्वयोर्वाऽन्यतरस्य = एकस्य वा कथं दोषः? यतः तौ विप्रः तत्पत्नी च धर्मैकप्रवृत्तौ = धर्मे अतिथिसेवायाम् एव एकस्मिन् प्रवृत्तौ = रतौ न इमम् अपराधम् अर्हतः। अहं = त्रिविक्रसेनः तावत् तस्य एव एकस्य

अर्थात् जानते हुए नहीं बोलोगे या गलत बताओगे तो तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

यह सुनकर राजा ने मौन तोड़कर उस बेताल से कहा – वह पाप किसका है? अर्थात् किसी का नहीं। शत्रु के द्वारा खाये जाते हुए पराधीन सांप का क्या अपराध है? भूख से व्याकुल बाज ने भी कुछ नहीं देखा, अतः उसका भी यहां कोई अपराध नहीं है। अचानक आये अतिथि को भोजन खाने योग्य वस्तु खिलाने वाले पति पत्नी में से किसी एक का भी अपराध नहीं है। वे दोनों दम्पती धर्माचरण-अतिथि सेवा में तत्पर है अतः यह अपराध उन दोनों का भी नहीं है। मैं यह ब्रह्महत्या उसीके लिये मानता हूँ जो विना विचारे इन तीनों में से किसी

ब्रह्महत्या इति मन्ये, योऽविचार्यैव एषामन्यतरस्य तां ब्रूयात् ' इति। इति- वादिनो नृपस्य स्कन्धात् स वेतालस्तत्क्षणादलक्षितः तमेव शिंशपातरुमवललम्बे। राजाऽपि तमानेतुं समुद्योगी तथैव अन्वधावत्।

एषा ब्रह्महत्या इति मन्ये योऽविचार्य एव एषां = सर्पश्येनान्नदातृणाम्, अन्यतरस्य = कस्याणि एकस्य तां = ब्रह्महत्यां, ब्रूयात् = कथयेद् इति वादिनः = कथयतः नृपस्य स्कन्धात् स वेतालः तत्क्षणाद् अलक्षितः तमेव शिशपातरुम् अवलम्बे। राजा अपि ताम् आनेतुं समुद्योगी = कार्य तत्परः तथैव अन्वधावत् = अनुजगाम।

एक को यह ब्रह्महत्या लगी है – ऐसा कहेगा। इस प्रकार कहने वाले उस राजा के कन्धे से वह बेताल तत्क्षण अदृश्य हो गया और उसी सेंमर के पेड़ पर लटक गया। राजा भी उसे लाने के लिए प्रयत्न करता हुआ फिर उसके पीछे-पीछे गया।

उपसंहार-कथा

स वेतालस्तं नृपमवदत्--'राजन्! कृष्णनिशाघोरेऽस्मिन् श्मशाने गतागतैः क्लिष्टस्त्वं सुखीव दृश्यसे, कोऽपि ते विकल्पो न विद्यते, तदाश्चर्येण धैर्येण च ते तुष्टोऽस्मि, त्वमिमं शवं नीत्वा इदानीं व्रज, अहमतो निर्गच्छामि, इदञ्च तव हितं यत् वदामि तत् कुरुष्व।

यदर्थे भवता एतत् नृकलेवरं नीयते, कुभिक्षुः स अद्य अस्मिन् मामाहूय अर्चयिष्यति, त्वाञ्च उपहारीचिकीर्षुः 'भूमौ साष्टाङ्गं प्रणामं

स वेतालः नृपं = त्रिविक्रमसेननामानं राजानम् अवदत्-राजन्! कृष्ण निशाघोरे = अन्धकारपूर्णरात्रौ, अस्मिन् श्मशाने गतागतैः = याताऽऽयातैः, क्लिष्टः = क्लेशयुक्तः त्वं सुखीव दृश्यसे = धैर्यपूर्वकं क्लेशं सहन्नपि न दुःखी असीति भावः। कोऽपि ते विकल्पो = भ्रमः संशयो वा न विद्यते, तद् आश्चर्येण धर्येण च ते तुष्टो = सन्तुष्टोऽस्मि, नितरां प्रसीदामीति भावः। त्वम् इमं शवं नीत्वा इदानीं व्रज = गच्छ, अहम् अतो = अस्मात् शरीरात् निर्गच्छामि। इदं च तव हितं = हितसाधनं च यद् वदानि तत् कुरुष्व।

यदर्थे = यस्य भिक्षोः अर्थे कृते भवता त्वया एतद् नृकलेवरं = मनुष्यशरीरं नीयते, स कुभिक्षुः = कुत्सितोभिक्षुः वञ्चक इति यावत् अद्य अस्मिन् शवे माम्

वह बेताल उस राजा से बोला – हे राजन्! इस काली अंधियारी रात में श्मशान में आते–जाते कष्ट सहते हुए भी तुम सुखी से लग रहे हो, तुम्हें कोई संशय नहीं, इस लिए तुम्हारे आश्चर्य और धैर्य से मैं सन्तुष्ट हूं, तुम इस शव को लेकर अब जाओ, मं यहां से (शव से) निकल जाता हूँ, जो तुम्हारे हित की बात मैं कहता हूं, वही करो।

जिस के लिए तुम्हारे द्वारा यह मनुष्य का शरीर लाया जाता है वह कुत्सित भिखारी आज इस शव में मुझे बुलाकर पूजा करेगा। तुमको बलि देने की इच्छा वाला तुमसे कहेगा भूमि में साष्टाङ्ग प्रणाम करो। महाराज! उस

कुरु' इति वक्ष्यति। महाराज! स दुरात्मा तावत् त्वया एवं वक्तव्यः, 'नाहं तथा प्रणामं जानामि, प्राक् त्वं दर्शय, ततोऽहं तथा करिष्यामि' इति।

ततो निपत्य भूमौ यावत् स त्वां प्रणामं दर्शयिष्यति, तावत् त्वमसिना तस्य शिरः छिन्द्याः, ततो विद्याधरैश्वर्यसिद्धिर्या तस्य वाञ्छिता, तां त्वमेव प्राप्स्यसि, अन्यथा तु स भिक्षुस्त्वामुपहारीकृत्य स्वेष्टसिद्धिं करिष्यति। एतदर्थं तव एतावान् विलम्बः कृतो मया, तत्ते सिद्धिरस्तु,

---

वेतालम् आहूय अर्चयिष्यति = पूजां विधास्यति, त्वा च उपहारीचिकीर्षु उपहारं = बलिं दातुम् इच्छुः भूमौ साष्टाङ्गं प्रणामं कुरु इति वक्ष्यति। महाराज! स दुरात्मा = दुष्टः आत्मा यस्य सः तावत् त्वया एवं वक्तव्यः-नाहं तथा प्रणामं जानामि, प्राक् त्वं दर्शय, ततः अहं तथा करिष्यामि इति।

ततः = तदा, भूमौ = पृथिव्यां, निपत्य = अधः पतित्वा यावत् स प्रणाम = नमस्कार मुद्रां दर्शयिष्यति तावत् त्वम् असिना = खड्गेन तस्य शिरः छिन्द्याः = त्रोटयेः कर्तय इति भावः। ततः = तस्माद् विद्याधरैश्वर्यसिद्धिः विद्याधराणाम् ऐश्वर्यस्य अणिमादि अष्टविधस्य सिद्धिः प्राप्तिः या तस्य वाञ्छिता = अभीप्सिता, तां सिद्धिं त्वम् एव प्राप्स्यसि। अन्यथा तु स भिक्षुः त्वाम् उपहारीकृत्य = बलिं दत्त्वा स्व इष्टसिद्धिं करिष्यति। एतदर्थं = अस्मात् कारणात्, तव = एतावान् विलम्बः कृतो मया। तत् ते = तस्मात् ते सिद्धिः अस्तु गच्छ इदानीम्-इति

दुष्ट आत्मा से तुमको यह कहना चाहिये – मैं उस प्रकार प्रणाम नहीं जानता पहले तुम दिखाओ तब मैं वैसा ही करूँगा।

तब पृथिवी में गिर कर जैसे ही वह नमस्कार मुद्रा दिखायेगा, वैसे ही तुम तलवार से उसका सिर काट देना। तब विद्याधरों की अणिमादि अष्टसिद्धियां जो उसने चाहीं थीं, उन सभी सिद्धियों को तुम प्राप्त कर लोगे। अन्यथा वह भिक्षु तुम्हारी बलि देकर सब सिद्धि प्राप्त कर लेगा। यही कारण है कि मैंने इतना बिलम्ब किया। तुम्हारी सिद्धि हो, अब जाओ – ऐसा कह कर वह उसके कंधे से चला गया। उसके बाद वेताल के कहने के अनुसार अपने हित के लिए वैसा

गच्छेदानीम् इति उक्त्वा स वेतालः तस्य स्कन्धात् निर्गत्य प्रययौ।

अथ स नरपतिर्वेतालवचसा तं क्षान्तिशीलं भिक्षुं तथा स्वाहिताय समुद्यन्तं विविच्य तत् नृकलेवरं गृहीत्वा प्रहृष्टः तत् वटतरुतलं प्रतस्थे।

ततः स राजा त्रिविक्रमसेनः शवं स्कन्धे वहन् क्षान्तिशीलस्य श्रमणस्य पार्श्वं प्राप, ददर्श च तं मार्गावलोकिनमेकं कृष्णपक्षरात्र्यां श्मशानतरुमध्यगम्।

स राजा असृग्लिप्तस्थले, गौरेण अस्थिचूर्णेन निर्मिते, विन्यस्तपूर्ण शोणितकुम्भे, महातैलकृतप्रदीपे, कृतानलहोमे, सम्भृतोचितसम्भारे,

---

उक्त्वा स वेतालः तस्य स्कन्धात् निर्गत्य प्रययौ = गतवान्।

अथ = अनन्तरं, स नरपतिः = राजा वेतालवचसा तं क्षान्तिशीलं भिक्षुं तथा स्वअहिताय समुद्यन्तं = स्व बलिप्रदानाय प्रवृत्तं, विविच्य = निभाल्य तत् नृकलेवरं = मनुष्य शरीरं गृहीत्वा प्रहृष्टः = प्रसन्नः तत् वटतरुतलं प्रतस्थे।

ततः स राजा त्रिविक्रमसेनः शवं स्कन्धे वहन् क्षान्तिशीलस्य श्रमणस्य = भिक्षोः पार्श्वं प्राप। तं मार्गावलोकिनम् = मार्गं राज्ञः आगमनमार्गम् अवलोकयतीति तथाविधं तं भिक्षुकं कृष्णपक्षरात्र्यां श्मशानमध्यगं स राजा ददर्श = अपश्यत्।

स राजा असृग्लिप्तस्थले = असृजा = रुधिरेण लिप्तं स्थलं भूमिर्यस्य तस्मिन्, गौरेण अस्थि पूर्णेन निर्मिते, विन्यस्त पूर्णशोणितकुम्भे = स्थापितरक्तपूर्णघटे, महातैलकृतप्रदीपे = महातैलेन = मनुष्यवसया कृता प्रज्वालिता प्रदीपाः यस्मिन्, कृतानलहोत्रे = कृतं अनले होमं यत्र तस्मिन्, सम्भृतोचितसम्भारे =

उद्योग करने वाले शान्ति शील भिक्षु के पास पहुंचा, उसे अपनी बाट जोते हुए (प्रतीक्षा करते हुए) कृष्ण पक्ष की रात में श्मशान के बीच में स्थित पेड़ के नीचे देखा।

वह राजा खून से लथ-पथ जमीन में, सफेद हड्डी के चूरे से बने, रक्त के भरे घट रखे हुए, मानव की चर्बी से जलते दीप वाले, जहां अग्नि में होम हो रहा था, जहां उचित सामग्री के रखे हुए, जहां इष्ट देवता की पूजा हो चुकी थी

कृतेष्टदैवतपूजने मण्डले समुपविष्टं तमुपागात्।

भिक्षुश्च तम् आनीतमृतकं नृपं समुत्थाय प्रोवाच-'राजन् ! त्वया अन्यदुष्करो महान् अनुग्रहो मे विहितः, त्वादृशाः क्व? क्व च इयं चेष्टा? क्व च वा ईदृशौ देशकालौ? सत्यमेव त्वां कुलभूभुजां मुख्यमाहुः, एवमात्मानपेक्षेण येन परार्थः साध्यते। एतदेव महतां महत्त्वमुच्यते यत् प्रतिपन्नादचलनं प्राणानामत्ययेऽपि।' इति ब्रुवन् स भिक्षुः सिद्धार्थमानी तस्य स्कन्धात् तं शवमवतारयामास।

संस्थापितोचितोपकरणे, कृतेष्टदेवपूजने = कृतं इष्टदेवस्य पूजनं यत्र तस्मिन् मण्डले समुपविष्टं तम् भिक्षुकम् उपगात् = निकटं ययौ।

भिक्षुश्च तम् आनीतमृतकं = आनीतो मृतशरीरो येन सः तं नृपं समुत्थाय प्रोवाच-राजन्! त्वया अन्यदुष्करो = अपरेण अकरणीयः महान् अनुग्रहो = महती कृपा मे = मम, विहितः = कृता, त्वादृशाः क्व क्व च इयं चेष्टा = अयं प्रयासः, क्व च वा ईदृशौ देशकालौ? सत्यमेव त्वां कुलभूभुजां = कुलीनभूपालानां, मुख्यं = प्रधानं, आहुः = कथयन्ति लोकाः इति शेषः। एवम् आत्मानपेक्षेण = आत्मनि निःस्पृहेण येन परार्थः = परस्य कार्यं साध्यते। एतदेव महतां महत्त्वम् उच्यते यत् प्रतिपन्नान् = स्वीकृतात् अचलनं परिपालनं प्राणानाम् अत्यये = नाशेऽपि। इति ब्रुवन् स भिक्षुः सिद्धार्थमानी = सिद्धः सफलः अर्थः कार्यं यस्य स सिद्धार्थं मन्यते तस्य स्कन्धात् तं शवम् अवतारयामास।

उस मण्डलाकार स्थान में बैठे हुए उस भिक्षु के पास गया।

शव को लाने वाले उस राजा को देख भिक्षु उठ कर बोला-राजन्! तुमने मेरा महान् उपकार किया, जो किसी दूसरे के द्वारा नहीं किया जा सकता। तुम्हारे जैसे कहां, कहां यह चेष्टा, कहां ऐसा देश और काल, सत्य ही कहते हैं तुम्हें लोग कुलीन राजाओं का सिर मौर जो इस प्रकार अपनी उपेक्षा करके दूसरे का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। यही महान् लोगों की महत्ता है कि जो कुछ स्वीकार कर लेते हैं। उससे विचलित नहीं होते, प्राण भले ही चले जाय-यह कहता हुआ वह भिक्षु अपने लक्ष्य को सिद्ध समझ कर उस (राजा) के कन्धे से शव को उतारने लगा।

ततस्तं स्नापयित्वा बद्धमाल्यं विधाय तस्य मण्डलस्य अन्तः स्थापयामास।

ततः भस्मालेपितगात्रः केशयज्ञोपवीती प्रावृतप्रेतवसनः भूत्वा क्षणं ध्याननिभृतं स्थितः।

अथ ध्यानबलात् तस्मिन् नृकलेवरे प्रविष्टं तं वेतालं स भिक्षुः क्रमेण पूजयामास।

प्रथमं तस्मै कपालेन पात्रेण अर्घ्यं, ततः सुनिर्मलैर्नवदन्तैः पुष्पं, शोणितं सुगन्धिविलेपनं, मानुषनेत्रं धूपं, मांसानि च नैवेद्यानि दत्त्वा

ततः तं शवं स्नापयित्वा, बद्धमाल्यं = बद्धं परिधापितं माल्यं यश्च स तम्, विधाय तस्य मण्डलस्य अन्तः = मध्ये स्थापयामास।

ततः भस्मालेपितगात्रः = भस्माच्छुरितशरीरः, केशयज्ञोपवीती = केशविरचितयज्ञोपवीतधारी, प्रावृतप्रेतवसनः = प्रावृतम्, आच्छादितं प्रेतवसनं = मृतशरीरवस्त्रं येन सः भूत्वा क्षणं ध्याननिभृतं = ध्यानमग्नः स्थितः।

अथ = अनन्तरं ध्यानबलात् तस्मिन् नृकलेवरे = शवे प्रविष्टं तं वेतालं स भिक्षुः क्रमेण पूजयामास।

प्रथमं तस्मै = वेतालाय, कपालेनपात्रेण = मनुष्य शिरोऽस्थिरूपेण भाजनेन अर्घ्यं, ततः सुनिर्मलैः नवदन्तै, पुष्पं, शोणितं रक्तं सुगन्धिलेपनं, मानुष नेत्रं धूपं = मनुष्यनेत्रकल्पितम् एव धूपोपचारं, मांसानि च नैवेद्यानि दत्त्वा पूजनं यथाविधि = शास्त्रानुसारं समाप्य पार्श्वगं = समीपस्थं राजानं प्रोवाच = अब्रवीत्-राजन्!

उसने तब उस शव को स्नान करा कर, माला पहना कर उस मण्डल (घेरे) के अन्दर रख दिया, फिर शरीर में भस्म लगा कर केशों का जनेऊ पहने हुए, मुर्दे को ढक कर एक क्षण ध्यान लगाकर बैठा। ध्यान के बल से उस शव में बेताल का प्रवेश हो गया। तब क्रम से उसकी उस (भिक्षु) ने पूजा की। पहले उसे मुर्दे की खोपड़ी से अर्घ्य दिया, फिर साफ नये दांतों के पुष्प दिये, खून का सुगन्धित विलेपन किया, मनुष्य के नेत्र रूपी धूप सुघाई। मांस को नैवेद्य रूप में दिया, इस प्रकार विधि विधान से पूजा करके पास खड़े राजा से वह बोला –

पूजनं यथाविधि समाप्य पार्श्वगं राजानं प्रोवाच-

'राजन् ! इहास्य मन्त्राधिराजस्य कृताविर्भावस्य अष्टाभिरङ्गैः निपत्य भूतले प्रणामं कुरु, येन अभीष्टसिद्धिं तेऽयं वरप्रदो दास्यति।'

श्रुत्वैतत् स्मृतवेतालवचनः स राजा तं भिक्षुमब्रवीत्- 'भगवन्! नाहं तादृशं प्रणामं वेद्मि, तत् पूर्वं भवान् प्रदर्शयतु, ततस्तथाऽहं करिष्ये' इति।

ततः स भिक्षुः यावत् तथा प्रणामं दर्शयितुं भुवि पतितः, तावत् स राजा खड्गप्रहारेणास्य शिरः अच्छिनत्, आकर्षच्चास्य हृत्पद्मं पाटितम् ततः तत् शिरः तच्च हृत्पद्मं वेतालाय प्रददौ।

इह अस्य मन्त्राधिराजस्य = मन्त्रस्य अधिराजः अधिष्ठातृ देवता तस्य, कृताविर्भावस्य= कृतः, आविर्भावः = प्राकट्यं यस्य तस्य अष्टाभिरङ्गै निपत्य भूतले प्रणामं कुरु, येन ते=तुभ्यम् अयं वरप्रदः = वरदायी अभीष्ट सिद्धिं दास्यति।

श्रुत्वैतत् = एतदाकर्ण्य, स्मृतवेतालवचनः = स्मृतं वेतालस्य वचनं येन सः राजा तं भिक्षुम् अब्रवीत्- भगवन्! न अहं तादृशं = अष्टाङ्गं प्रणामं, वेद्मि= जानामि, तत्पूर्वं भवान् प्रदर्शयतु ततः तथाऽहं करिष्ये।

ततः = अनन्तरं सभिक्षुः यावत् तथा प्रणामं दर्शयितुं भुवि पतितः, तावत् स राजा खड्गप्रहारेण अस्य शिरः अच्छिनत्। आकर्षत् = आकर्षयास च अस्य (भिक्षोः) हृद्यपद्मं = हृदयकमलं, पाटितं = विदीर्णं, ततः तत् शिरः तच्च हृत्पद्मं वेतालाय प्रददौ।

हे राजन्! यहां इस मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता का आविर्भाव हो गया। इसको पृथ्वी पर साष्टाङ्ग प्रणाम करो, जिससे यह वरदानी तुम्हें अभीष्ट सिद्धि देगा। यह सुनकर राजा को बेताल का वचन याद आया, तब उसने भिक्षु से कहा - भगवन्! मैं वैसा प्रणाम नहीं जानता हूं, अतः पहले आप करके दिखाइये, उसके बाद मैं वैसा ही कर दूंगा। तब वह भिक्षु जब तक प्रणाम दिखाने के लिए पृथ्वी में झुका, तब तक राजाने खड्ग का प्रहार करके उसका मस्तक काट दिया, उसके हृदय को फाड़ कर खींच लिया। तब उसका सिर और हृदय बेताल को दे दिया।

ततः समन्तात् भूतगणैः हृष्टैः साधुवादे प्रदत्ते स वेतालः परितुष्ट-स्तस्मात् नृकलेवरात् नृपमब्रवीत्--

'राजन् ! भिक्षोरस्य यत् विद्याधरेन्द्रत्वमीप्सितमासीत्, तत्तावत् भूमिसाम्राज्यभोगान्ते ते भविष्यति।'

इत्युक्तवन्तं तं वेतालं स राजा प्रत्यवादीत् -'योगीन्द्र! त्वञ्चेत् प्रसन्नः तदा को नाम अभीष्टो वरः न सिध्येत् ? तथापि अमोघवचनं त्वाम् इदमभ्यर्थये, एतास्ते मनोरमाः प्रश्नकथाः भूतले ख्याताः पूजनीयाश्च भवन्तु।' इति तेन राज्ञाऽर्थितो वेतालः प्रत्यभाषत--'राजन् ! एवमस्तु'

ततः = तदनन्तरं, समन्तात् पार्टितः भूतगणैः हृष्टैः = प्रसन्नैः, साधुवादे-प्रदत्ते साधु इत्युक्ते स वेतालः परितुष्टः तस्मात् नृकलेवराद् नृपं = राजानम् अब्रवीत्-

राजन्! भिक्षोः अस्य यद् विद्याधरेन्द्रत्वम् = विद्याधरचक्रवर्तित्वम्, ईप्सितम् = इच्छितम् आसीत्, तत् तावद् भूमि साम्राज्य = पृथ्वीराज्यभोगान्ते ते भविष्यति।

इत्युक्तवन्तं तं वेतालं स राजा प्रत्यवादीत्-त्वं चेत् प्रसन्नः तदा को नाम अभीष्टो वरो न सिद्ध्येत? तथापि अमोघवचनं = अव्यर्थवचनं त्वाम् इदम् अभ्यर्थये = प्रार्थये, एताः ते मनोरमाः = हृदयङ्गमाः प्रश्नकथा भूतले ख्याताः प्रसिद्धाः पूजनीयाः आदरणीयाः च भवन्तु इति तेन राज्ञाऽर्थितो वेतालः प्रत्यभाषत

तब चारों ओर भूतों के साधुवाद दिये जाने पर उससे बेताल सन्तुष्ट हो गया और उस मनुष्य शरीर से राजा से बोला – हे राजन्! इस भिक्षुक की इच्छा विद्याधरों का राजा बनने की थी; वह सिद्धि इस भूपर राज्य समाप्त होने पर तुम्हारी पूरी होगी।

ऐसा कहते हुए उस बेताल से राजा ने कहा – हे योगिश्रेष्ठ ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो कौन सा इच्छित वर प्राप्त नहीं हो सकता। अर्थात् सुब कुछ मिल सकता है। फिर भी एक सफल वचन की आपसे प्रार्थना करता हूं। ये मनोहारिणी प्रश्न कथायें भूतल में प्रसिद्ध हों और आदर पायें, ऐसा राजा के मांगने पर बेताल ने कहा–ऐसा ही होगा,। यह कहकर बेताल उस शव से

इत्युक्त्वा स वेतालस्तस्मात् नृकलेवरात् निर्गत्य यथारुचि योगमायया स्वं धाम प्रायात्।

ततः सर्वैर्देवगणैः सह महेश्वरः परितुष्टः तत्राऽऽविरभूत्, प्रणतञ्च तं नृपम् आदिक्षत् -- 'साधु वत्स! यत् त्वयाऽयं विद्याधरमहाचक्रचक्र-वर्त्तिताहठकामुकः कूटतापसः निहतः। त्वं मया स्वांशतः विक्रमादित्यः सृष्टः स्वेच्छारूपावतीर्णानामसुराणां शान्तये, उद्दामदुर्वृत्तानां दमनाय च। अतः सद्वीपपातालां महीं वशे स्थापयित्वा विद्याधराणामधिराजो भविष्यसि, तत्र च चिरं दिव्यान् भोगान् भुक्त्वा, स्वेच्छया च तान्

= प्रत्यवदत्-राजन्! एवमस्तु - इत्युक्त्वा स वेतालः तस्मात् नृकलेवराद् = शवाद् निर्गत्य यथारुचि = स्वेच्छानुसारं, योगमायया = स्वकीयेन अद्भुतसामर्थ्येन स्वं धाम प्रायात् = स्व लोकं गतवान्।

ततः = तदनन्तरं सर्वैः देवगणैः सह महेश्वरः = शिवः, तत्र = तस्मिन् श्मशानभूमौ आविरभूत् =,प्रकटितो बभूव। प्रणतं च तां नृपम् आदिशत् = आदिदेश--साधु वत्स यत् त्वया अयं विद्याधरचक्रवर्तिताहठकामुकः = विधाधराणां यत् महाचक्रं = महामण्डलं, तस्य या चक्रवर्तिता = अधिराजत्वं, तस्य हठेन बलेन कामुकः अभिलाषी कूट तापसः = कपट तपस्वी, निहतः = मारितः। त्वं मया स्वांशतः विक्रमादित्यः सृष्टः = निर्मितः, स्वेच्छारूपावतीर्णानां = निजेच्छया अवतीर्णानां धृतजन्मनाम् असुराणां शान्तये, उद्दामदुर्वृत्तानां = उच्छृङ्खलानां दुश्चरितां दमनाय च। अतः सप्तद्वीपपातालां महीं = पृथिवीं वशे

निकलकर अपनी इच्छा के अनुसार योग बल से अपने लोक को चला गया।

तब सभी देवताओं के साथ भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और प्रणाम कर ने वाले उस राजा से बोले - वत्स! तुमने विद्याधरों की चक्रवर्तिता को हठपूर्वक प्राप्त करने की इच्छा वाले इस कपटी तापस को मार कर बहुत अच्छा किया।

विक्रमादित्य के रूप में तुमको मैंने अपने अंश से प्रकट किया है। स्वेच्छाचारी असुरों की शान्ति के लिए और उच्छङ्खल दुश्चरितों के दमन के

त्यक्त्वा अन्ते ममैव सायुज्यमवाप्स्यसि। एतञ्च अपराजितं नाम खड्गं मत्तो गृहाण, अस्यैव प्रसादात् यत् यदुक्तं तत् सर्वं ते सेत्स्यति' इत्युक्त्वा तत् खड्गरत्नं तस्मै दत्त्वा, वाक्पुष्पैश्च तेनार्चितः शम्भुः देवैः सह तिरोदधे।

अथ सर्वं कार्यं समाप्तं निशाञ्च प्रभातां दृष्ट्वा राजा स्वपुरं प्रतिष्ठानं प्रविवेश।

तत्र प्रकृतिभिर्विहितोत्सवाभिरभ्यर्चितः स्नानदानगिरिशार्चनगीत-वाद्यादिभिः तत् सर्वं दिनमनयत्।

स्थापयित्वा विद्याधराणाम् अधिराजो भविष्यसि, तत्र च चिरं दिव्यान् भोगान् भुक्त्वा, स्वेच्छया च तान् त्यक्त्वा अन्ते मम एव सायुज्यं = सामीप्यं अवाप्स्यसि। एतत् च अपराजितं नाम खड्गम् = असिः, मत्तो = मत्सकाशाद् गृहाण, अस्य एव प्रसादात् = कृपया यत् यदुक्तं तत्सर्वं ते सेत्स्यति = सम्पत्स्यते। इत्युक्त्वा ततं खड्गरत्नं तस्मै दत्त्वा, वाक्पुष्पैः = शब्दकुसुमैः च तेन अर्चितः शम्भुः देवैः सह तिरोदधे = अन्तर्दधे।

अथ = अनन्तरं सर्वं कार्यं समाप्तं = पूर्णं निशां च प्रभातां = सञ्जात प्रभातां दृष्ट्वा राजा स्व पुरं = नगरं, प्रतिष्ठानं = प्रविवेश।

तत्र प्रकृतिभिः = प्रजाभिः, विहितोत्सवाभिः = विहितम् उत्सवं यैः तैः अभ्यर्चितः = पूजितः, स्नान-दान-गिरिशार्चनगीत वाद्यादिभिः = स्नानं, नित्यदानं, गिरीशस्य शम्भोः अर्चनं, वाद्य वीणादिकम् एवद्यादिभिः कार्यैः तत्सर्वं दिनम् अनयत्।

लिये। अतएव सात द्वीपों वाली पाताल पर्यन्त पृथ्वी में राज्य करके तुम विद्याधरों के राजा बनोगे, वहां बहुत दिनों तक दिव्य भोगों को भोग कर अपनी इच्छा के अनुसार अन्त में मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे। यह अपराजित नाम की तलवार मुझसे ग्रहण करो, इसकी कृपा से तुम्हारे लिए जो कुछ अभी कहा गया है, सब सम्पन्न होगा। यह कहकर वह खड्ग उसको दिया, तब राजा के द्वारा शब्द सुमनों से अर्चित शम्भु देवताओं के साथ अन्तर्ध्यान हो गये।

ततः स्वल्पैरेव दिवसैः भगवतः शङ्करस्य प्रसादात् सद्वीपां सपातालां सर्वां महीं निष्कण्टकां वशीकृत्य बुभुजे।

अथ महतीं विद्याधरसमृद्धिं सम्प्राप्य चिरं तत्सुखानि सम्भुज्य भगवत्सायुज्यमन्ते ययौ।

ततः स्वल्पैरेव दिवसैः भगवतः शंकरस्य प्रसादात् = अनुग्रहात् सद्वीपां सपातालां सर्वां महीं = पृथिवीं, निष्कष्टकां = शत्रुहीनां वशीकृत्य बुभुजे = भुक्तवान्।

अथ = अनन्तरं महतीं विद्याधरसमृद्धिं = विधाधराणां वैभवं सम्प्राप्य चिरं तत् सुखानि सम्भुज्य भगवत्सायुज्यं = शिवसन्निधिम्, अन्ते = देहावसाने, ययौ = प्राप्तवान्।

इसके बाद सभी कार्य समाप्त कर, रात बीतने पर राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया। वहां प्रजा के द्वारा विभिन्न उत्सवों में पूजित, स्नान, दान, शिवपूजन, गीत, वाद्य आदि के साथ उसने दिन बिताया।

तत्पश्चात् कुछ दिनों में ही भगवान् शंकर को कृपा से उस राजा ने सभी द्वीपों के साथ पाताल के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी को शत्रु रहित बना कर राज्य किया।

उसके बाद उसने विद्याधरों की समृद्धि अर्थात् वैभव को पा कर उन सुखों का अनुभव कर अन्त में शिव सायुज्य को प्राप्त किया।

पुस्तक प्राप्तिस्थान-

शारदा संस्कृत संस्थान

सी.२७/५९ जगतगंज, वाराणसी-२२१००२.

दूरभाष - (०५४२) २२०४१६८